चन्दामामा
मार्च १९८०

पारले ग्लुको
पारले मोनॅको
पारले क्रॅकजॅक

तथ्यः कुरकुरे, ताज़े और मशहूर पारले बिस्कुटों के नक्काल बेशुमार हैं

सिद्ध करना है कि: पारले बिस्कुटों की शक्लो-सूरत की नकल चाहे कोई कर भी ले, पर स्वाद की– हरगिज़ नहीं !

प्रमाण अ) खरीद की परख : पहली बात तो यह याद रखिये, कि पारले मोनॅको खुले कभी नहीं बिकते. ये सिर्फ़ स्वच्छतापूर्वक पैक किये हुये रोल्स, चौकोर डिब्बों और टिनों में ही मिलते हैं ताकि इनका बेमिसाल ताज़ापन बरकरार रहे.

ब) पैकेट की परख : किसी भी शेल्फ़ पर आकर्षक मोनॅको बिस्कुट का पैकेट पहचान लेना बेहद आसान है. फिर भी पूरी तसल्ली के लिये पैकेट पर P-A-R-L-E नाम ठीक से पढ़ लीजिये.

स) स्वाद की परख : ज़रा एक बिस्कुट चख कर तो देखिये. अगर इसमें वो जाना-पहचाना खस्तापन और कुरकुरापन मौजूद है, तो यह असली पारले मोनॅको ही है.

यही सिद्ध करना था.

इन तीनों का नतीजा – बेहतरीन लज़्ज़त.

everest/79/PP/453-hn

चन्दामामा-कैमल रंग प्रतियोगिता

निःशुल्क प्रवेश

इनाम जीतिए

कैमल-पहला इनाम १५ रु.
कैमल-दूसरा इनाम १० रु.
कैमल-तीसरा इनाम ५ रु.
कैमल-आश्वासन इनाम ५
कैमल-सर्टिफिकेट १०
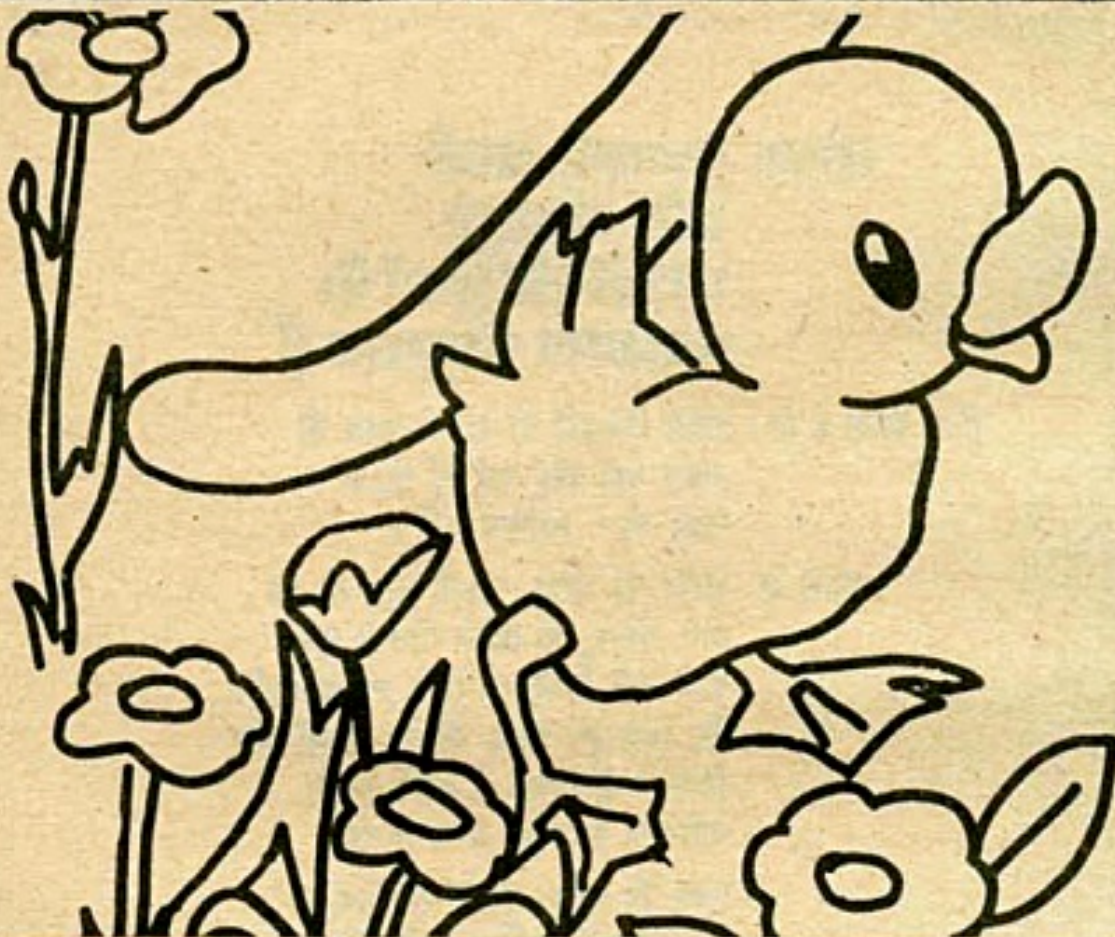
केवल १२ वर्ष तक के विद्यार्थी प्रतियोगितामें शामिल हो सकते हैं। उपर दिये गये चित्रमें अपने मनचाहें कैमल रंग भर दिजिए। अपने रंगीन प्रवेश-पत्र नीचे दिये गए पते पर भेजिए P.B. No. 9928, COLABA, Bombay-400 005.

परिणाम का निर्णय अन्तिम निर्णय होगा। और कोई भी पत्रव्यवहार, नहीं किया जाएगा।

Name.. Age.................

Address..

कृपया अपना नाम और पता अंग्रेज़ी में लिखिए।

CONTEST NO.13

कृपया ध्यान रखिए कि पूरा चित्र पेंट किया जाये।

चित्र भेजने की अंतिम तारीख: *31-3-1980*

Results of Chandamama—Camlin Colouring Contest No. 12 (Hindi)

1st Prize: Anita Y. Satane, Selao. *2nd Prize:* Shiv Kumar Panday, Kanpur. *3rd Prize:* Hemant K. Kaku, Delhi. *Consolation Prizes:* Baljinder Singh, New Delhi. Ranjna Verma, New Delhi. Archana Jain, Shadool. Sanjay Khangan, Bilaspur. Sonal R. Jagirdar, Ujjain.

A CHANDAMAMA PUBLICATION
चन्दामामा
संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी
इस महीने की बेताल कथा "आज्ञाकारी पुत्र" है। यह कहानी हमें यह बताती है कि किसी भी युग में किसी भी स्थिति में भी मानव के द्वारा आचरण करनेवाले अनेक धर्म होते हैं और उनके बीच संघर्ष होता है। ऐसी हालत में सही धर्म का निर्णय करना बहुत ही जरूरी होता है। इसी वास्ते धर्म के वास्तविक तत्व को हमें समझने का प्रयत्न करना चाहिए।
अमर वाणी
नमंति फलिता वृक्षा:, नमंति च बुधा जना:;
शुष्क काष्ठानि, मूर्खाश्च भिद्यंते न नमंति च ॥
[फल देनेवाले वृक्ष झुकते हैं, बुद्धिमान झुकते हैं (नम्र होते हैं), लेकिन ठूंठ और मूर्ख टूट सकते हैं, पर झुकते नहीं।]
वर्ष : ३२
मार्च १९८०
अंक : ७
एक प्रति : १-५०
वार्षिक चन्दा : १८-००

लक्ष्मण, हक्कूर (कर्नाटक)

प्र.: अशोक, कनिष्क आदि ने भारत तथा अन्य देशों में भी बौद्ध धर्म का प्रचार किया, लेकिन भारत में बौद्ध धर्म क्यों लुप्त हो गया? जैन धर्म क्यों बचा रहा?

उ.: कहा जाता है कि बौद्ध धर्म साम्राज्यों के अनुकूल स्थापित धर्म है। साम्राज्यों की स्थापना करनेवाले मगध राजाओं ने स्वयं बौद्ध धर्म को स्वीकार किया हो या नहीं, पर बौद्ध धर्म को उन लोगों ने प्रोत्साहन दिया। अशोक ने अपने समय में यह साबित किया कि बौद्ध धर्म हिंसा का सहारा लिये बिना ही साम्राज्य की रक्षा कर सकता है। अहिंसा के द्वारा प्रचारित होकर विश्व भर में व्याप्त धर्म बौद्ध धर्म को छोड़ दूसरा नहीं है। साम्राज्यों के समाप्त होने पर जब क्षेत्रीय राज्य स्थापित हुए, तब हमारे देश में बौद्ध धर्म का अंत हो गया। वर्ण व्यवस्था के साथ समझौता न कर पा सकने के कारण बौद्ध धर्म हमारे देश में टिक न पाया, पर जैन धर्म समझौता कर ठहर पाया। यही कारण है कि जैन धर्म विदेशों में व्याप्त न हो पाया।

बी. नारायणराव, चीपुरपल्लि (आन्ध्र)

प्र.: उदय व अस्त होनेवाले सूर्य या उदय अथवा अस्त होनेवाले पूर्णिमा के चन्द्रमा लाल होते हैं, इसका क्या कारण है?

उ.: उदय होनेवाले सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाश की किरणों को पृथ्वी तक पहुँचने के लिए पृथ्वी के चारों तरफ़ व्याप्त वायु की परतों में बड़ी दूर तक यात्रा करनी पड़ती है। इस कारण सूर्य-रश्मि में व्याप्त रंग-बिरंगी किरणें वायु में छितर जाती हैं। सब से ज्यादा दूर तक सीधे यात्रा कर सकनेवाली अत्यधिक लंबी तरंगोंवाली लाल किरणें हैं। उन्हीं को हम उदय और अस्त के समय देखते हैं। ध्वनि-तरंगों के प्रति भी यही बात है। दूर से आनेवाली 'बैण्ड' के वाद्य में सब से पहले हमें 'ड्रम' की ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। क्योंकि ध्वनि-तरंगों में सब से लंबी तरंगें ये ही हैं।

सूर्य के प्रकाश में बड़ी सरलता के साथ छितरनेवाली नीले प्रकाश की तरंगें हैं। वायु की परत में वे व्याप्त रहती हैं, इसी वजह से आकाश नीला दिखाई देता है। पर आकाश काला होता है।

अपरीक्षित कारकम्

[८०]

अतिलोभी ने 'हवा में क़िले बांधना' कहानी सुनकर कहा–"वह ब्राह्मण भी अपनी असफल कामनाओं के पीछे दौड़कर अपने पास जो कुछ था, उससे भी हाथ धो बैठा।"

"सच है, मगर उस ब्राह्मण ने जो कुछ खोया और सारे बदन पर डाल लिया, वह सिर्फ़ सत्तू ही तो है। पर मैंने सोना ही खो डाला। सारे बदन पर खून गिरा लिया। अब मेरे मन में यह विश्वास जमता जा रहा है कि मानव के भाग्य का निर्णय करनेवाली वस्तु विधि है, उसके अच्छे व बुरे कार्य नहीं।" अत्यंत लोभी ने कहा।

"दोस्त! यह चक्र तुम्हारे सर को मथते हुए खून को छितराते देख मैं पागल बनता जा रहा हूँ। मुझे लगता है कि बंदर की परेशानी देख भागनेवाले राक्षस की भांति मैं भी कहीं भाग जाऊँ।" अतिलोभी ने कहा। इस पर अत्यंतलोभी ने वह कहानी सुनने की इच्छा प्रकट की, अतिलोभी ने वह कहानी यों सुनाई :

धोखा खानेवाले राक्षस की कहानी

एक नगर में भद्रसेन नामक राजा रहा करते थे। उसके रत्नवती नामक समस्त लक्षणों से पूर्ण एक पुत्री थी। उस पर मोहित हो एक राक्षस ने उसे उठा ले जाने की कोशिश की, पर रत्नवती ने राक्षस को रोकने के उपायों का अनुसरण करके उसकी कोशिश को असफल बनाया।

एक दिन वह राक्षस गुप्त रूप से छिप बैठा था, तब राजकुमारी अपनी सखी से कह रही थी–"प्यारी सखी, प्रति दिन मुझे प्रदोष नामक राक्षस सता रहा है।

लेकिन मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं उसे कैसे रोकूं ?"

राक्षस ने ये बातें सुनकर अपने मन में सोचा–"इस युवती के साथ मेरे ही जैसे एक और राक्षस भी प्यार करता है। पर यह जैसे मुझे रोक पाती है, वैसे उसे रोक नहीं पा रही है। मुझे पहले उसकी खबर लेनी है।" यों विचार करके वह एक घोड़े का रूप धरकर घुड़साल में पहुंच गया।

उस दिन रात को घोड़ों का एक चोर राजा के घुड़साल में पहुँचा, सब से ज्यादा पुष्ट और आकर्षक लगनेवाले जादू के घोड़े पर सवार हो भागने लगा।

घोड़ा बड़ी तेज गति के साथ दौड़ने लगा। इस पर चोर पहले तो बड़ा खुश हुआ, मगर बाद को डरकर उसने कसकर लगाम खींच ली। लेकिन घोड़े की गति मंद न हुई, बल्कि और वेग के साथ वह दौड़ने लगा। क्योंकि उसके मन में यह डर पैदा हो गया कि उस पर सवार होनेवाला व्यक्ति प्रदोष राक्षस है, तब वह और तेज़ी के साथ भागने लगा।

इसी तरह चोर भी डर गया, क्योंकि लगाम के खींचने पर और वेग के साथ दौड़नेवाले घोड़े को उसने कभी देखा न था।

चोर ने सोचा–"यह घोड़ा नहीं, कोई पिशाच होगा।" यों सोचकर रास्ते में लटकनेवाली बदगद की जटाओं को पकड़कर वह ऊपर चढ़ बैठा।

प्रदोष राक्षस का पिंड छूटने पर घोड़े के रूप में स्थित राक्षस भी खुश हुआ।

मगर उसी पेड़ की ऊँची डालों पर रहनेवाले एक बंदर ने अपने मित्र राक्षस को घोड़े के रूप में देख पहचान लिया और पूछा–"तुम पर सवार होनेवाला व्यक्ति मनुष्य ही था। वह तुम्हारा सहज आहार था, तुमने उसे ढोया ही क्यों?"

बंदर की बात सुनकर राक्षस गुस्से में आ गया। उसकी पूंछ को डालों में

फँसाकर सताते हुए उसे काटने लगा। चोरवाला बंदर उस पीड़ा को सहन न कर पाया, उसने डरावना चेहरा बनाया।

इसे देख राक्षस बोला—"यह प्रदोष राक्षस कैसा भयंकर है, तुम्हारा चेहरा देखते ही मालूम होता है, मैं उसके हाथों में नहीं पड़ूंगा।" यों कहते वह भाग गया। अतिलोभी के मुँह से यह कहानी सुनकर अत्यंतलोभी ने कहा—"अगर क़िस्मत ने साथ दिया तो हत्या के प्रयत्न भी अंधे, कुबड़े और तीन थनवाली राजकुमारी के जैसे हितकारी सिद्ध होते हैं।"

"दोस्त! वह कहानी कैसी?" अतिलोभी के पूछने पर अत्यंतलोभी ने यों बताया:

तीन थनवाली राजकुमारी की कहानी

मधुरा के राज्य पर राजा मधुसेन राज्य करते थे, उनके यहाँ तीन थनवाली एक पुत्री पैदा हुई। यह खबर सुनकर राजा ने पहरेदार को आदेश दिया—"मैं उस शिशु को देखना नहीं चाहता, उसे किसी जंगल में छोड़ आओ।"

पहरेदार ने कहा—"महाराज, मैंने भी सुना है कि तीन थनवाली पुत्री के पैदा होने पर पिता के प्राणों के लिए खतरा है, फिर भी समाज की निंदा और अगले जन्म में पाप का फल भोगने से बचने के लिए कोई उपाय हो, आप इस संबंध में कृपया विद्वान ब्राह्मणों की सलाह ले लीजिए। कहा जाता है कि सावधानी

से विचार करनेवालों की बुद्धि का विकास सूर्य-किरणों से विकसित होनेवाले कमल जैसा होता है, इस कारण अज्ञान में रहकर असहाय बने व्यक्ति को बार-बार जिज्ञासा प्रकट करनी चाहिए। पुराने जमाने में एक ब्राह्मण ने एक ही प्रश्न के द्वारा बड़ी चालाकी के साथ अपने भीतर प्रवेश किये गये भूत का पिंड छुड़ा लिया है।"

"वह कैसी कहानी है?" राजा ने पूछा। इस पर पहरेदार ने यों सुनाया:

"एक भयानक जंगल में चण्डकर्म नामक एक बड़ा भूत रहा करता था। एक बार वह जंगल में एक ब्राह्मण को देख उसके कंधों पर चढ़ बैठा और बोला– "चलो, आगे बढ़ो।"

ब्राह्मण घबड़ाकर चलने लगा। थोड़ी देर बाद उसने देखा कि भूत के पैर कमल जैसे कोमल हैं। इस पर उसने भूत से पूछा–"तुम्हारे पैर ऐसे सुंदर क्यों हैं? इसका कारण बता सकते हो?"

"मैं एक नियम का पालन करता हूँ। वह यह कि मैं कभी गीले पैरों से नहीं चलता। इसीलिए मेरे पैर यों नाजूक हैं।" भूत ने जवाब दिया।

यह जवाब सुनने पर ब्राह्मण के दिमाग में भूत का पिंड छुड़ाने का उपाय सूझा।

थोड़ी देर में वे एक तालाब के पास पहुँचे। तब भूत बोला–"मैं इस तालाब में स्नान करके ईश्वर की आराधना करूँगा, तब लौटूंगा। तुम तब तक यहीं रहो, यहाँ से हिलो मत।" यों कहकर भूत तालाब में उतर गया।

ब्राह्मण ने सोचा–"यह भूत स्नान और पूजा के बाद निश्चय ही मुझे खा डालेगा। यहाँ से भाग जाने का यही एक अच्छा मौक़ा है। इस वक़्त वह मेरा पीछा नहीं कर सकता।" यों विचारकर वह तेजी के साथ भाग खड़ा हुआ। गीले पैरों से भूत चल नहीं सकता है न! इस तरह ब्राह्मण बाल-बाल बच गया।

भल्लूक मांत्रिक

[२०]

[मंत्रदण्ड पाने के बाद बैरागी के शिष्यों ने उसका प्रभाव जानने के लिए जमीन पर दे मारा जिससे वहाँ पर एक सुरंग निकल आया। भीतर खजाने की कल्पना करके बैरागी और उसके शिष्य सुरंग में उतर पड़े। उस वक्त तालाब के पास पहुँचनेवाला बधिक भल्लूक तलवार खींच करके बहेलिये पर हमला करने को हुआ। बाद...]

बधिक भल्लूक की भयंकर आकृति और उसके हाथ में चमकनेवाले परसु को देख बहेलिये ने भांप लिया कि भागने का प्रयत्न करना खतरे से खाली नहीं है, वह आपाद मस्तक कांप उठा और हाथ जोड़कर बोला-"महाशय, गत सात दिनों से मैं इस जंगल में विचित्र प्रकार के मनुष्यों और एक महान भयंकर राक्षस को भी देख रहा हूँ। लेकिन मैंने उनमें से किसी के साथ बातचीत नहीं की है। मैंने उस माया मर्कट को भी नहीं देखा है। एक जटाधारी लाल लाल वस्त्र धारण करके शंख बजाते चिल्ला रहा था- 'हे शिष्य माया मर्कट!' ये शब्द मैंने जरूर सुने हैं।"

बहेलिये के मुँह से ये शब्द सुनकर बधिक भल्लूक आश्चर्य में आ गया, फिर अपना परसु नीचे करके बोला-"अबे

स्पर्धा में एक और मांत्रिक भी निकल आये हो। अच्छी बात है। अबे बहेलिये, तुम जिन कपट बैरागी और सुरंग की बात बता रहे हो, उनका समाचार विस्तार से कह सुनाओ।" भल्लूक ने पूछा।

इसके बाद बहेलिया उन्हें उस सुरंग के पास ले गया जिसमें गुरु बैरागी और उसके शिष्य उतर गये थे। तब मंत्रदण्ड के साथ उन लोगों ने जो करिश्मे किये, उनका वृत्तांत भी कह सुनाया।

वह मंत्रदण्ड भल्लूक मांत्रिक के हाथों से माया मर्कट चुराकर ले गया था। यह बात बधिक भलीभांति समझ गया। इसका मतलब है कि अब वह मंत्रदण्ड किन्हीं बैरागियों के हाथों में पड़ गया है।

यह समाचार कालीवर्मा तथा भल्लूक मांत्रिक को देने को बधिक भल्लूक निकलने ही वाला था कि तभी कालीवर्मा घोड़े पर सवार हो वहाँ पर आ पहुँचा और बोला—"भल्लूक, यह प्रदेश हमारे वास्ते डेरे लगाने के लिए बड़ा ही अनुकूल मालूम होता है"

बधिक भल्लूक कालीवर्मा के विकट जाकर बोला—"कालीवर्मा साहब, डेरे लगवाने की बात फिर सोच लेंगे। अब आप इस बहेलिये से पूछकर देखिये, इसने दो आश्चर्यजनक बातें सुनाई हैं।"

बहेलिये! मुझे लगता है कि तुम हमें कई खास खास बातें सुनाने जा रहे हो! उन बातों का रहस्य मेरे मालिक कालीवर्मा साहब जानते होंगे। तुम भागो मत! तुम्हारे प्राणों के लिए कोई खतरा नहीं है।"

जंगली युवक भी अचरज में आकर बोला—"भल्लूक साहब! क्या इस बहेलिये की बातें यक़ीन करने लायक़ हैं? एक मांत्रिक और राक्षस उग्रदण्ड हमारे साथ हैं। ऐसी हालत में एक और मांत्रिक तथा राक्षस का इस जंगल में घूमना कैसे?"

"मेरी भी समझ में यह बात नहीं आ रही है! शायद हमारे भल्लूक मांत्रिक की

कालीवर्मा के पूछने पर बहेलिये ने फिर से बताया कि उसने जंगल में शंख मांत्रिक, राक्षस, बैरागी और उसके दो शिष्यों को देखा, यह भी बताया कि बैरागी मंत्रदण्ड की महिमा से पृथ्वी में सुरंग लगाकर कैसे उसके भीतर उतर गये।

दूसरे ही क्षण कालीवर्मा सुरंग के मुख-द्वार तक पहुँचा, भीतर झांककर तब सावधानी से नीचे की ओर उतर पड़ा। सीढ़ियाँ पार करते ही उसे दूर पर कहीं रोशनी दिखाई दी और साथ ही उसकी ओर बढ़नेवाली तीन काली आकृतियाँ थीं।

कालीवर्मा तुरंत सुरंग मार्ग के ऊपर आ पहुँचा, तब बधिक भल्लूक से बोला— "बधिक भल्लूक, तुम अपने जंगली सेवक को यहाँ पहरे पर बिठा दो, तुम मांत्रिक गुरु के पास पहुँच कर उन्हें यहाँ का सारा समाचार सुना दो। मैं इस बीच सुरंग मार्ग से अन्दर जाकर बैरागियों के हाथों से मंत्र-दण्ड फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न करूँगा।"

बधिक भल्लूक ने चार क़दम आगे बढ़ाया, फिर रुककर कहा—"कालीवर्मा साहब, कृपया आप यह बात न भूल जाइयेगा कि इस वक़्त बैरागियों के हाथों में भल्लूक मांत्रिक की महिमावाला मंत्रदण्ड है।"

कालीवर्मा तलवार खींचकर सुरंग की ओर मुड़ा, तब बोला—"भल्लूक! मैं कह नहीं सकता कि मेरी सोने की मूठवाली यह तलवार कैसी महिमा रखती है, पर इसकी शक्ति किसी भी मंत्रदण्ड से कम नहीं है। मेरे पिता के हाथ रहते वक़्त इस तलवार ने आज के राजा जितकेतु के पिता के अनेक शत्रुओं का संहार किया था। संभवतः शीघ्र ही यह तलवार राजा जितकेतु का सर काट सकती है।"

बरगद पर से नीचे कूदनेवाला बहेलिया चारों ओर नज़र दौड़ाते बोला— "सरकार, मैं अब अपने रास्ते जा सकता हूँ न?"

पूछा–"भाई साहब! तुमने कई बातें बताईं। ये बातें बड़ी अच्छी लगती हैं, दुष्ट और असमर्थ इस जितकेतु राजा को गद्दी पर से उतारनेवाले बलवान कौन हैं?"

जंगली युवक उसी वक़्त सुरंग के भीतर उतरनेवाले कालीवर्मा को दिखाकर बोला–"उस साहब का नाम कालीवर्मा है। इसके पहले राजा जितकेतु ने न केवल उनका अपमान किया, बल्कि सिरस वन में उनका सर कटवाने की भी कोशिश की। इस वक़्त ये उनसे बदला लेने जा रहे हैं।"

इसके बाद बधिक भल्लूक का जंगली सेवक बहेलिये के समीप जाकर बोला–"अबे, तुम तो बहेलिये हो; मैं जंगली हूँ। पेट भरने के लिए हमें तो सारे जंगल छानने पड़ते हैं। इसलिए तुम भी मेरे जैसे किसी बलवान के आश्रय में जाकर अपना पेट क्यों नहीं भर लेते? मेरा विश्वास है कि चन्द्रशिला नगर के राजा जितकेतु अब ज्यादा दिन तक गद्दी से चिपक कर नहीं रह सकते। उस वक़्त जीतनेवाले के पक्ष में रहनेवाले हमें राजदरबार में कोई न कोई अच्छी नौकरी मिल जाएगी।"

इस पर बहेलिये ने आशा भरी नज़र जंगली युवक की ओर दौड़ाकर

"भैया, मैं भी तुम्हारे साथ रहूँगा।" ये शब्द कहते बहेलिये ने उछलकर जंगली युवक से गले लगा लिया।

सुरंग मार्ग में प्रवेश करनेवाला कालीवर्मा घुटने तक के पानी में थोड़ी दूर तक चला, आगे बढ़नेवाले बैरागियों को सचेत करके बोला–"तुम लोग रुक जाओ।"

यह चिल्लाहट सुनते ही बैरागी चौंक पड़े और घूमकर देखा। बैरागी का छोटा शिष्य थर-थर कांपते बोला–"बैरागी गुरु! लगता है कि खजाने की रक्षा करनेवाले यक्ष हमारे प्राण लेने चले आ रहे हैं!"

गुरु बैरागी पल भर के लिए चकित रह गया, कालीवर्मा की ओर परख कर देखते

हुए बोला–"अरे शिष्यो, हमें ज़्यादा डरने की ज़रूरत नहीं है। हमारी तरफ़ आनेवाला व्यक्ति यक्ष जैसे नहीं लगता। हमारे गुरु के मुंह से सुना है कि यक्ष नाटे होते हैं और उनका कंठ स्वर पतला होता है। यह तो कोई आजानुबाहू है। इसका कंठ स्वर घंटी जैसे तीव्र है। यह तो साधारण मानव है। हम इसे अपने मंत्रदण्ड से परलोक भिजवा देंगे।"

गुरु बैरागी की बातें पूरी होने के पहले ही कालीवर्मा तेजी के साथ उनके समीप गया और बोला–"अरे, मैं तुम लोगों की सारी बातें जानता हूँ। यह तलवार तुम्हारे द्वारा चुराये गये मंत्रदण्ड से कहीं ज़्यादा शक्तिशाली है। क्या तुम लोग इसकी परीक्षा लेना चाहते हो?" इन शब्दों के साथ कालीवर्मा ने तलवार दिखाई।

तलवार की चमक-दमक देखते ही बैरागी के दोनों शिष्य घबरा गये और अपने गुरु से बोले–"गुरुजी! जल्दी आप मंत्र जापकर इसको भस्म करवा दीजिए!"

गुरु बैरागी ने भय के मारे कांपते हुए मंत्रदण्ड ऊपर उठाया और कोई मंत्र जाप किया। पर इससे जब कोई प्रयोजन सिद्ध न हुआ तब कालीवर्मा उसके समीप जाकर गुरु बैरागी की छाती पर तलवार टिकाकर बोला–"अरे बैरागी, इस मंत्रदण्ड का मालिक मैं हूँ। यह सिर्फ़ मेरी ही आज्ञा का पालन करता है। तुम मुझे यह मंत्रदण्ड मेरे हाथ सौंप दोगे या तुम्हारी छाती में तलवार चुभो दूं?"

गुरु बैरागी सोचता रहा कि मंत्रदण्ड को कालीवर्मा के हाथ सौंप दिया जाय या नहीं, तभी उसके दोनों शिष्य एक स्वर में बोले–"बैरागी गुरु! आप यह मंत्रदण्ड उनके हाथ सौंप दीजिएगा। अगर वह कोई महिमा रखता है तो ज़रूर हमारी रक्षा करता। इस जाड़े के मौसम में अलाव में जलाने के अलावा इस मंत्रदण्ड का कोई महत्व मालूम नहीं होता।"

"शिष्यो, तुम लोगों ने खूब कहा।" इन शब्दों के साथ गुरु बैरागी ने अपनी कपट गंभीरता का प्रदर्शन करते कालीवर्मा के हाथ मंत्रदण्ड सौंप दिया, तब कहा– "वीर युवक! मैं तुम्हारे साहस और पराक्रम पर मुग्ध हूँ। तुम यह मंत्रदण्ड ले जाकर जितकेतु राजा के द्वारा दत्त पुत्री बनानेवाली युवती के साथ विवाह करके सौ वर्ष की पूरी आयु भोगो और आराम के साथ चन्द्रशिला नगर पर शासन करो।"

ये बातें सुन हँसते हुए कालीवर्मा ने मंत्र दण्ड अपने हाथ में लिया, तब सोचने लगा कि इसके बाद वह आगे बढ़े या पीछे चला जाय, तभी गुरु बैरागी कोई रहस्य बतलानेवाले का अभिनय करते बोला– "हे वीर युवक, उस खजाने में से थोड़ा अंश हमें भी देना कहीं न्याय संगत होगा न?"

गुरु बैरागी के ये शब्द सुनने पर कालीवर्मा के दिमाग में कोई बात सूझी। उसने बैरागियों की ओर एक बार परखकर देखा, तब कहा–"बेचारे, लगता है कि तुम लोग इस सुरंग में किसी खजाने की कल्पना करके चले आये हो। लेकिन मुझे ऐसा मालूम होता है कि यह सुरंग राजवंश के लोगों ने इस ख्याल से खुदवाया होगा कि ज़रूरत पड़ने पर दुश्मनों से बचकर राजमहल से बाहर भाग जावे! मगर यदि यहाँ पर कोई सोना-चांदी आदि मिल जाय तो उन्हें ले जाने के लिए मैं तुम लोगों को अनुमति दे सकता हूँ। क्या तुम लोग मेरे साथ सुरंग में आ सकते हो?"

ये बातें सुन गुरु बैरागी और उसके शिष्य बहुत ही खुश होकर बोले–"हे वीर युवक! क्या हम आप की बातों का तिरस्कार भी कर सकते हैं? आप आगे रहकर रास्ता दिखाइये।"

इसके बाद सब लोग दूर पर प्रकाश में दीखनेवाले प्रदेश की ओर चल पड़े। एक जगह सुरंग मार्ग समाप्त हो गया,

पर ऊपर जो चट्टान ढकी हुई थी, उसकी दरारों में से धुंधली रोशनी छनकर आ रही थी।

कालीवर्मा ने बैरागियों से कहा—"सुनो अगर हम ऊपर की चट्टान को बिना आहट के बगल की ओर ढकेल सके तो तब हम जान सकते हैं कि राजा के क़िले के किस हिस्से में पहुँच गये हैं। हूँ, मेरे हाथ बटा दो।"

इसके बाद सबने मिलकर चट्टान को एक तरफ़ ढकेल दिया। दूसरे ही क्षण सुरंग मार्ग सूरज की रोशनी में चमक उठा। ऊपर चट्टान पर ढके फूलों के कुछ पौधे मंद-मंद ध्वनि के साथ गिर गये।

सब से पहले कालीवर्मा ऊपर पहुँचा, चारों तरफ़ नज़र दौड़ाकर जान लिया कि वे सब राजा के उद्यान में पहुँच गये हैं। इस पर उसने इशारा किया। इशारा पाकर सभी बैरागी सुरंग मार्ग से ऊपर आये और बोले—"ओह! इस उद्यान का कैसा सौंदर्य है! यह तो राजा जितकेतु के उद्यान जैसा है।"

कालीवर्मा ने उन्हें धीरे से बात करने की चेतावनी दी और समझाया—"हम लोग अत्यंत खतरनाक प्रदेश में आ गये हैं। मुझे तो प्राणों का अधिक मोह नहीं

है। अगर कोई राज सेवक मुझे घेर ले, तो मेरी ज़ान के रहते में उनके हाथ में बन्दी नहीं बनूंगा; पर तुम लोगों की क्या बात है?"

बैरागी गुरु थर-थर कांपते बोला—"हमें तो प्राणों का ज्यादा मोह है। इसलिए मौत का स्वागत न कर सकने की हालत में यों मुफ़्त में धन-संपत्ति पाना चाहते हैं। अब हमें साफ़ मालूम हो गया कि इस सुरंग में खजाना नहीं है। अगर आप की अनुमति मिल जाय तो हम अपने रास्ते चले जायेंगे।"

कालीवर्मा बैरागियों को वापस जाने की बात कह ही रहा था, उसी समय

सुरंग मार्ग की ओर स्थित पेड़ों की ओट में से राजा जितकेतु और माया मर्कट वार्तालाप करते आ गुजरे। कालीवर्मा झट से फूलों के पौधों की ओट में छिपते हुए बैरागियों से बोला–"तुम लोगों की जान के लिए कोई खतरा नहीं है। अगर तुम लोग राजा और माया मर्कट की आँखों में पड़ गये तो राजा से झूठ-मूठ कह दो कि खोया हुआ मंत्र दण्ड नगर के किसी व्यापारी के हाथ हमने उस मंत्र दण्ड को देख लिया है, इसलिए यही खबर सुनाने के लिए हम आये हैं। फिर देखेंगे कि इसके बाद क्या होता है!"

कालीवर्मा यों समझा ही रहा था, तभी कहीं दूर से शंखनाद सुनाई दिया। इसके दूसरे ही क्षण माया मर्कट समीप के पेड़ की डाल पर उछलते आ पहुँचा और बोला–"तांत्रिक गुरु की जय! आप शंख-ध्वनि क़िले के बाहर से कर रहे हैं या भीतर से?"

थोड़ी देर बाद शंखनाद बंद हो गया। माया मर्कट पेड़ की डाल पर से नीचे कूदने ही जा रहा था, कि उसे भय के मारे चारों ओर दृष्टि दौड़ानेवाले तीन बैरागी दिखाई दिये।

माया मर्कट जोर से किचकिच करते चिल्लाकर बोला–"महाराज, यह आप का उद्यान है या बैरागियों का मठ है? आप इसी वक़्त उन फूल के पौधों के पास रहनेवाले बैरागियों को बन्दी बनवाँ लीजिएगा।" यों सचेत करते वह नीचे कूद पड़ा।

राजा जितकेतु ने जोर से तालिया बजाई, राजभटों को पुकारा, तब बैरागियों के समीप जाकर ललाकर पूछा–"तुम लोग कौन हो? किसकी अनुमति से मेरे उद्यान में पहुँच गये?"

इस पर गुरु बैरागी दोनों हाथ उठाकर बोला–"मंत्रदण्ड!...श्यामगुप्त!... मंत्रदण्ड!...श्यामगुप्त!..."

(और है)
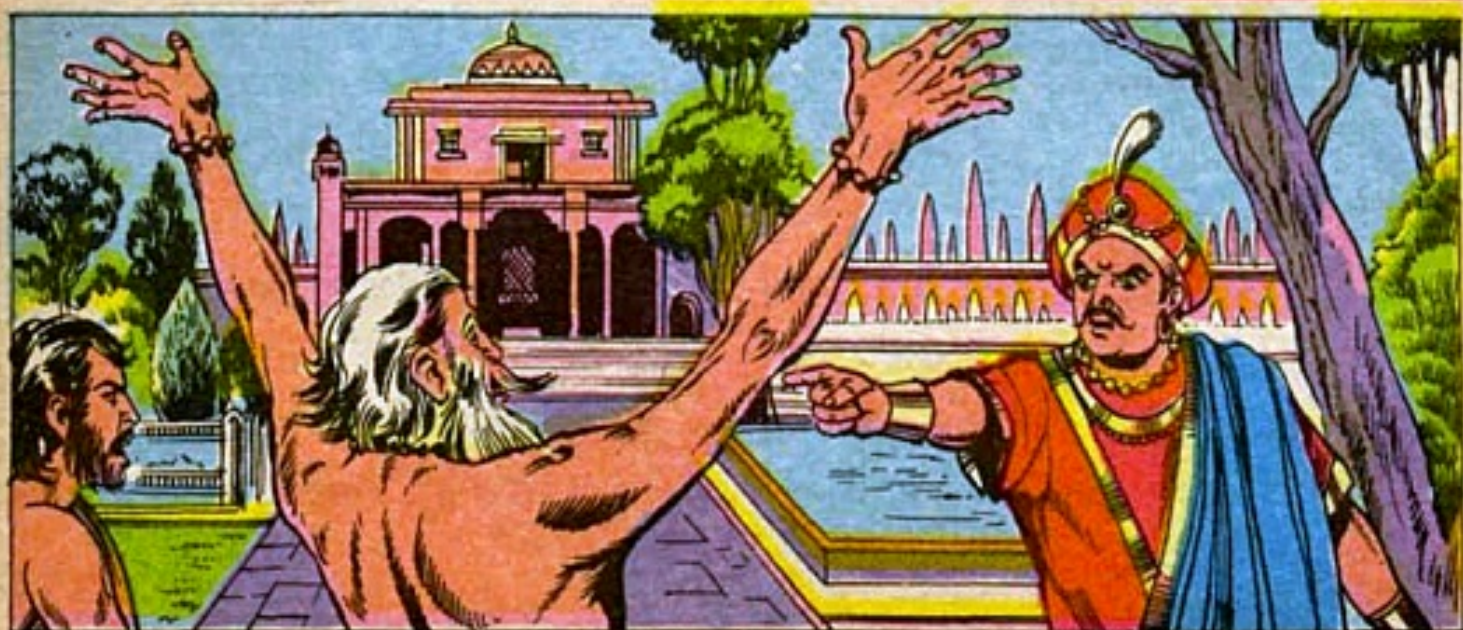
आज्ञाकारी पुत्र

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया। पेड़ पर से शव उतारकर कंधे पर डाल सदा की भांति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा–"राजन, हो सकता है कि आप किसी ऊँचे आदर्श के हेतु यों श्रम उठा रहे हो, पर उन आदर्शों का पालन करने की सामर्थ्य भी होनी चाहिए। वरना अपने पिता की आज्ञा का पालन न कर पा सकनेवाले शेखर की भांति आप भी सर्वनाश को प्राप्त होंगे। श्रम को भुलाने के लिए मैं आप को शेखर की कहानी सुनाता हूँ।"

बेताल यों सुनाने लगा: शेखर विदेह राज्य के एक ऊँचे राज कर्मचारी का पुत्र था। उसके पिता का नाम वैशाख था। वैशाख के जैसे विदेह राजा के भी इकलौता पुत्र था विजय। विजय और

वेताल कथाएँ

शेखर बचपन के दोस्त थे। दोनों ने एक ही गुरु के यहाँ शिक्षा पाई और एक ही पिता की संतान की भांति पले और बढ़े। विजय राजा बननेवाला था, फिर भी वह शेखर को अपने ही बराबर मानता था।

शेखर के पिता की मृत्यु जब निकट आई, तब उसने अपने पुत्र को गुप्त रूप से निकट बुलाकर समझाया—"बेटा, यदि तुम अपने पिता का ऋण चुकाना चाहते हो, तो मेरी एक इच्छा की पूर्ति करनी होगी। क्या तुम इस बात का वचन दे सकते हो?"

"पिताजी, मैं ज़रूर आप की इच्छा की पूर्ति करूँगा। जो अपने पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता, वह सच्चा पुत्र नहीं कहलाता। बताइये, आप की कैसी इच्छा है?" शेखर ने पूछा।

"तुम विदेश के राजवंश का अंत कर दो।" वैशाख ने कहा।

"पिताजी, आप यह क्या कह रहे हैं? आखिर इसके पीछे कोई कारण भी तो हो?" शेखर ने पूछा।

"विदेह राजा भले ही मेरे मालिक हों, पर उन्होंने एक बार भरी सभा में मेरा अपमान किया है। इसलिए इस राजवंश के समाप्त होने पर ही मेरी आत्मा को शांति मिल सकती है। अगर तुम अपने वादे के पक्के हो तो मेरी अंतिम इच्छा की पूर्ति करो। तुम्हारे क़सम खाने पर ही मैं निश्चित मर सकता हूँ।" विशाख ने अपना दृढ़ निश्चय सुनाया।

शेखर ने अपने पिता की अंतिम इच्छा की पूर्ति करने की क़सम खाई। तब वैशाख ने अपने प्राण त्याग दिये।

अपने पिता की मृत्यु के बाद शेखर को राजदरबार में उसकी नौकरी मिली। क़रीब क़रीब उसी समय विदेह राजा ने अपने पुत्र विजय को गद्दी पर बिठाया। अब शेखर विजय के अधीन एक नौकर था, फिर भी विजय शिकार खेलने, टहलने या और किसी काम से कहीं जाता तो शेखर को अपने साथ ले जाता था।

दरबार से बाहर आने पर वे दोनों मालिक और नौकर की तरह नहीं, बल्कि गहरे दोस्तों के जैसे व्यवहार करते थे।

वैसे विजय के मन में राजा के बनने के बाद भी कोई परिवर्तन नहीं आया, मगर शेखर का दिल दिन ब दिन बदलता गया। उसने अपने पिता को जो वचन दिया था, उसका पालन करना हो तो उसे राजवंश का अंत करना होगा। इस वास्ते केवल विजय का वध करना पर्याप्त था। क्योंकि विदेह राजा के और कोई संतान न थी और न होने की संभावना भी थी। इसलिए मौक़ा मिलने पर विजय का अंत करने के लिए शेखर अपने मन को दृढ़ बनाने लगा।

एक बार विजय शिकार खेलने जाते वक़्त शेखर को भी अपने साथ ले गया। जंगल में एक बार दोनों मित्र सैनिकों से कहीं दूर चले गये। शेखर मौक़ा देख विजय की पीठ पर छुरी भोंकने जा रहा था, तभी कुछ सैनिक उधर से आ निकले जिससे शेखर का प्रयत्न बेकार गया।

एक बार दोनों दोस्त नगर के बाहर टहलने के लिए एक पहाड़ पर चले गये। वह एक सुंदर प्रदेश था। पहाड़ के उस पार एक गहरी घाटी थी। घाटी सीध में थी, इस वजह से उसमें उतरना मुश्किल था। लेकिन पहाड़ी के छोर पर खड़े हो उसके सुंदर दृश्य को देखा जा सकता था। दोनों दोस्तों ने पहाड़ के छोर पर खड़े हो

कई बार उस सुंदर घाटी को देख आनंद लूटा था।

एक बार शेखर विजय को पहाड़ के छोर पर ले गया। वहाँ से विजय को अगर घाटी में ढकेल दे तो उसकी लाश को पहचानना भी कठिन होगा। शेखर ने सोचा कि विजय घाटी के सुंदर दृश्य को देखने में डूबा हुआ है और विजय को घाटी में ढकेलने को हुआ।

उसी वक़्त विजय ने मुड़कर देखा और शेखर से कहा–"यह प्रदेश बड़ा ही खतरनाक है, चलो, नीचे चले जायेंगे।"

पहाड़ से उतरकर दोनों दोस्त एक चट्टान पर बैठ गये। तब विजय ने शेखर से कहा–"दोस्त! कल रात को मैंने एक बड़ा ही बुरा सपना देखा है।"

"वह कैसा सपना है?" शेखर ने पूछा।

"उस सपने में तुमने मेरी पीठ पर छुरी भोंक दी। मैंने अपने प्राण छोड़ते वक़्त तुम्हारा ही नाम लेते तुम्हारी आँखों में देखा। हमारे ऐसे घनिष्ट मित्रों के बीच ऐसी घटना की कल्पना भी नहीं की जा सकती है न?"

सपने की बात सुनने पर शेखर के मुंह से बोल नहीं फूटे। उसका चेहरा पीला पड़ गया। इसे भांपकर विजय ने शेखर से पूछा–"तुम इधर कुछ दिनों से मेरा वध करने की सोच रहे हो! बताओ, मेरे द्वारा तुम्हारे प्रति कौन सा अन्याय या अत्याचार हुआ है? सच सच बतला दो।"

शेखर ने अपने पिता की अंतिम इच्छा कह सुनाई। इस पर विजय ने समझाया–"श्रीरामचन्द्र की तरह तुम भी आज्ञाकारी पुत्र बनना चाहते हो, यह बात प्रशंसनीय है। इसलिए तुम मुझे अपनी छुरी से मारकर अपने पिता के ऋण से मुक्त हो जाओ।"

विजय के मुँह से ये बातें निकलते ही शेखर ने अपनी छुरी निकाली। उसी क्षण विजय ने भी अपनी तलवार खींचकर उसका सामना किया। इसे देख शेखर अचरज में आ गया।

विजय मुस्कुराकर बोला–"शेखर, बात यह है कि तुम मुझे यूँ ही मार डालोगे तो तुम्हें हत्या का पाप लगेगा और मुझे नरक प्राप्त होगा। दोनों अगर वीरों की तरह लड़कर मरेंगे तो हमें वीर स्वर्ग प्राप्त होगा।"

इसके बाद दोनों ने खड्ग युद्ध किया। विजय के सामने शेखर ठहर न पाया। उसके हाथ की तलवार छूटकर दूर जा गिरी। एक ही धक्के में शेखर को नीचे गिराकर विजय ने कहा–"तुम अपने पिता की आज्ञा का पालन न कर पाये, इसलिए वीर स्वर्ग को पा लो।" ये शब्द कहते विजय ने एक ही वार में शेखर का सर काट डाला।

बेताल ने यहाँ तक कहानी सुनाकर कहा–"राजन, विजय के द्वारा अपने घनिष्ट मित्र का वध करना क्या अन्याय नहीं है? शेखर वैसे साधारण हत्यारा नहीं, उसने एक आदर्श के वास्ते विजय का वध करना चाहा। इसलिए ऐसे व्यक्ति को कारागार में बन्दी बनाया जा सकता था, मगर विजय ने उसे क्यों मार डाला? क्या इस भावना से कि शेखर उसका संहार करने को हुआ? या उसके प्रति विजय के मन में सच्ची मैत्री की भावना न रही? इस संदेह का समाधान जानते हुए भी न देंगे तो आप का सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

इस पर विक्रमार्क ने कहा–"अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए ही सही, शेखर ने विजय की हत्या करनी

चाही, लेकिन विजय ने शेखर की हत्या करनी नहीं चाही, द्वन्द्व युद्ध में उसे मार डालने का मौक़ा विजय ने शेखर को दिया। पर विजय को द्वन्द्व युद्ध में मारने की शक्ति शेखर में नहीं रही। केवल पिता की आज्ञा का पालन करना ही मानव के लिए एक मात्र आदर्श नहीं होता! इसके साथ कृतज्ञता, राजभक्ति, मित्रता का धर्म, ऐसे कई आदर्श मानव के सामने हैं। जब मानव के आदर्शों के बीच संघर्ष होता है, तब अपने तुच्छ आशय को छोड़ मानव को ऊँचे आदर्श का पालन करना चाहिए। शेखर के विषय में पिता की आज्ञा का पालन का आदर्श तुच्छ है। क्योंकि शेखर का पिता क्षुद्र व्यक्ति है। विदेह राजा बड़े ही उदार थे, इसी कारण से उसके अनेक अपराधों को देखकर भी उन्होंने उसे दरबारी नौकरी से नहीं हटाया। फिर भी अगर राजा ने भरी सभा में उसका अपमान किया और उसके प्रति कड़ी कार्रवाइयाँ कीं, तो इसका मतलब है कि शेखर का पिता अपने कर्तव्य के पालन में असमर्थ रहा होगा। अब हमें यह कहना पड़ेगा कि शेखर ने भी क्षुद्रतापूर्ण व्यवहार किया है। जब शेखर के पिता ने अपनी अंतिम इच्छा बताई, तब शेखर अपने पिता को बता सकता था कि वह उसकी इच्छा पूरी न कर सकेगा। पर उसने ऐसा नहीं किया। अलावा इसके विजय ने जब अपने सपने का वृत्तांत बताया, तब शेखर अपनी गलती को समझकर विजय के पैरों पर गिरकर अपनी करनी के लिए क्षमा माँग सकता था, मगर उसने वैसा नहीं किया। विजय ने जब स्वयं उसका वध करने को कहा, तब शेखर का तलवार खींचना परम नीच कार्य ही कहा जाएगा। ऐसे व्यक्ति की मृत्यु के बारे में चिंता करने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पुनः पेड़ पर जा बैठा

(कल्पित)

नया भूत—पुराने भूत

एक गाँव में एक किसान था। उसके यहाँ दो बैल थे। थोड़े दिन बाद उनमें से एक बैल मर गया। इसलिए बैल खरीदने के वास्ते किसान अपने पुत्र को साथ ले घर से चल पड़ा। रास्ते में खाने के वास्ते किसान की पत्नी ने बजारे की तीन रोटियाँ बनाकर बांध दी।

बाप-बेटे हाट में पहुँचे। बड़ी देर बाद उन्हें एक बैल पसंद आया। उसका सौदा करके खरीद लिया, तब घर की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्हें भूख लगी, एक कुएँ में उतरकर रोटी खाने के पहले दोनों ने हाथ मुँह धो लिये।

किसान के लड़के ने रोटियों की पोटली खोलकर देखा। उसमें तीन रोटियाँ थीं। लड़का बोला—"बाबूजी, तुम्हें दो और मुझे एक!"

उस कुएँ में तीन भूत निवास करते थे। किसान के लड़के के मुँह से ये बातें सुन तीनों भूत घबरा गये, बाहर पहुँचकर बोले—"भाइयो, हमें मत खाइयेगा। आप जो भी काम बतायेंगे, सो हम दिल लगाकर करेंगे।"

किसान ने भांप लिया कि ये तो भूत हैं, और उन्हें देख डर गये हैं, तब बोला—"तुम लोग हमारे साथ चलो, हम जो भी काम बतायेंगे, सो करते जाओगे तो तुमको हम नहीं खायेंगे।"

"आप जो कहेंगे, सो करेंगे।" भूतों ने विनयपूर्वक उत्तर दिया।

इसके बाद किसान और उसका बेटा अपने नये बैल के साथ भूतों को भी घर ले आये और उनसे सब तरह के काम कराने लगे। भूत भी सारे काम मिनटों में कर देते थे।

शिव शर्मा

भूतों की बात यों रही। मगर उन्हें देखने जब-तब जो भूत आते थे, उन्होंने कुएँ में अपने साथी भूतों को न पाकर दरियाफ़्त किया तो उन्हें पता चला कि कोई मानव आकर उन भूतों को अपने साथ ले गये हैं।

उन पुराने भूतों को ढूंढ़ते एक नया भूत किसान के घर आया, उन्हें एक मवेशीखाने में देख पूछा—"तुम लोग अपने पुराने निवासवाले कुएँ को छोड़ यहां पर क्यों रहते हो?"

"दोस्त! हम अपनी यह मुसीबत को क्या कहे? दो मानव कुएँ में उतर आये, हमें खा जाने का डर दिखाकर अपने साथ घर ले आये और उस दिन से हम से बेगारी ले रहे हैं।" पुराने भूत रोते हुए बोले।

"तब तो तुम लोग चिंता न करो। मैं इन आदमियों को मार डालूंगा। मुझे इस कोने में छिप जाने दो।" नये भूत ने कहा।

इस बीच किसान और उसका पुत्र मवेशी खाने में आ गये। पिता ने नये बैल को देख अपने बेटे से कहा—"सुनो बेटा, इस नये को गठिया रोग हो गया है। इसे ठीक करने के लिए कलछी गरम करके रखा है। जल्दी लेते आओ।"

ये बातें सुनने पर नया भूत डर के मारे कांप उठा। किसान के पैरों पर गिरकर बोला—"महानुभाव! कलछी से मुझे मत जलाओ। मैं भी पुराने भूतों के जैसे सारे काम करूँगा। वे तो सिर्फ़ खेत से कपास ही लाते हैं, मगर मैं उसे धुन करके रखूंगा।"

"मैं भी यही बात कहना चाहता था। आइंदा मुझे धुनी हुई रूई चाहिए।" किसान बोला।

इसके बाद पुराने भूत नये भूत को गालियां देते हुए बोले—"तुमने हमें छुड़ाने की डींग मारी, मगर उल्टे धुनने का काम भी हमारे सर पर डाल दिया।" यों उसकी निंदा की।

मानवों के बीच राक्षस

विन्ध्याचल के जंगलों में कामरूप नामक एक राक्षस निवास करता था, उसे अपनी इच्छा के अनुसार कोई भी रूप धारण करने की शक्ति प्राप्त थी। थोड़े समय बाद उस जिंदगी के प्रति उसके मन में विरक्ति पैदा हुई और उसने मरना चाहा। पर वह यह नहीं जानता था कि कैसे मरे। पहाड़ों पर से वह एक ही छलांग में नीचे उतर सकता था। समुद्र का जल उसके घुटनों तक ही आ जाता था। दूसरे रूप में मरना चाहे तो उसे खतरे की हालत में उसका असली रूप प्राप्त हो जाता था। इस कारण उसके सामने मरने का कोई उपाय नहीं रहा।

एक बार विन्ध्याचलों में एक तेजस्वी ऋषि आ पहुँचे। उनके तेज पर प्रभावित हो कामरूप ने मानव रूप में उनके दर्शन किये और उन्हें अपनी कहानी सुनाई।

ऋषि ने राक्षस को समझाया—"राक्षसों के दिन तो अब लद गये हैं। साथ ही राक्षस जन्म में कोई सुख नहीं है। तुम्हारा यह सोचना अच्छा ही है कि तुम अपने जीवन का अंत करना चाहते हो, मगर तुम्हारी अभी बड़ी लंबी आयु है। अगर तुम इस वक़्त मर जाओगे, तो तुम्हें एक और जन्म धारण करना पड़ेगा। तुम बतला दो कि तुम किस तरह का जन्म चाहते हो, तब तुम्हें मैं इस जन्म से मुक्ति दिलाऊँगा।"

पर कामरूप की समझ में न आया कि कौन-सा जन्म माँगे, आखिर उसने ऋषि की ही सलाह माँगी। ऋषि ने कामरूप को बताया—"सभी जन्मों में मानव जन्म उत्तम है। तुम वही माँग लो।"

ऋषि की बातों में कहाँ तक सचाई है, यह जानने के लिए कामरूप ने थोड़े समय

तक मानवों के बीच रहने की इच्छा प्रकट की और वह उसी वक़्त वहाँ से चल पड़ा।

आखिर कामरूप मानव के रूप में एक शहर में पहुँचा। वहाँ पर वह एक घर में रहते मानवों की गतिविधियों पर निगरानी रखने लगा। उसे लगा कि मानव नीति एवं नियमों का पालन करते हुए कैसा सुखमय जीवन बिता रहे हैं।

उस शहर का प्रधान रक्षक वीरसिंह था। नगरवासियों का दृढ़ विश्वास था कि वीरसिंह के नगर रक्षक के पद पर रहते नगर को किसी के द्वारा कोई खतरा पैदा न होगा। कामरूप ने पता लगाना चाहा कि वीरसिंह कैसा पराक्रमी है, इसका पता लगाने वह उससे मिलने गया।

वीरसिंह ने कामरूप के सामने अपनी शक्ति और सामर्थ्य की डींग मारी, अंत में बोला–"मैंने सुना है कि विक्रमार्क जैसे लोगों ने कई राक्षसों का सामना करके उन्हें मार डाला है, यदि मुझे भी मौक़ा मिले तो मैं भी ऐसा कर सकता हूँ।"

फिर क्या था, कामरूप ने अपना असली रूप धरकर कहा–"अगर तुम तीन बार मेरी परिक्रमा करके मेरे चरणों पर प्रणाम करो, तभी मैं तुम्हें प्राणों के साथ छोड़ सकता हूँ।" वीरसिंह ने थर-थर कांपते हुए राक्षस की तीन बार परिक्रमा की और उसके पैरों पर गिर पड़ा। मानवों के पराक्रम का इस तरह पता लगाकर कामरूप वहाँ से गायब हो गया।
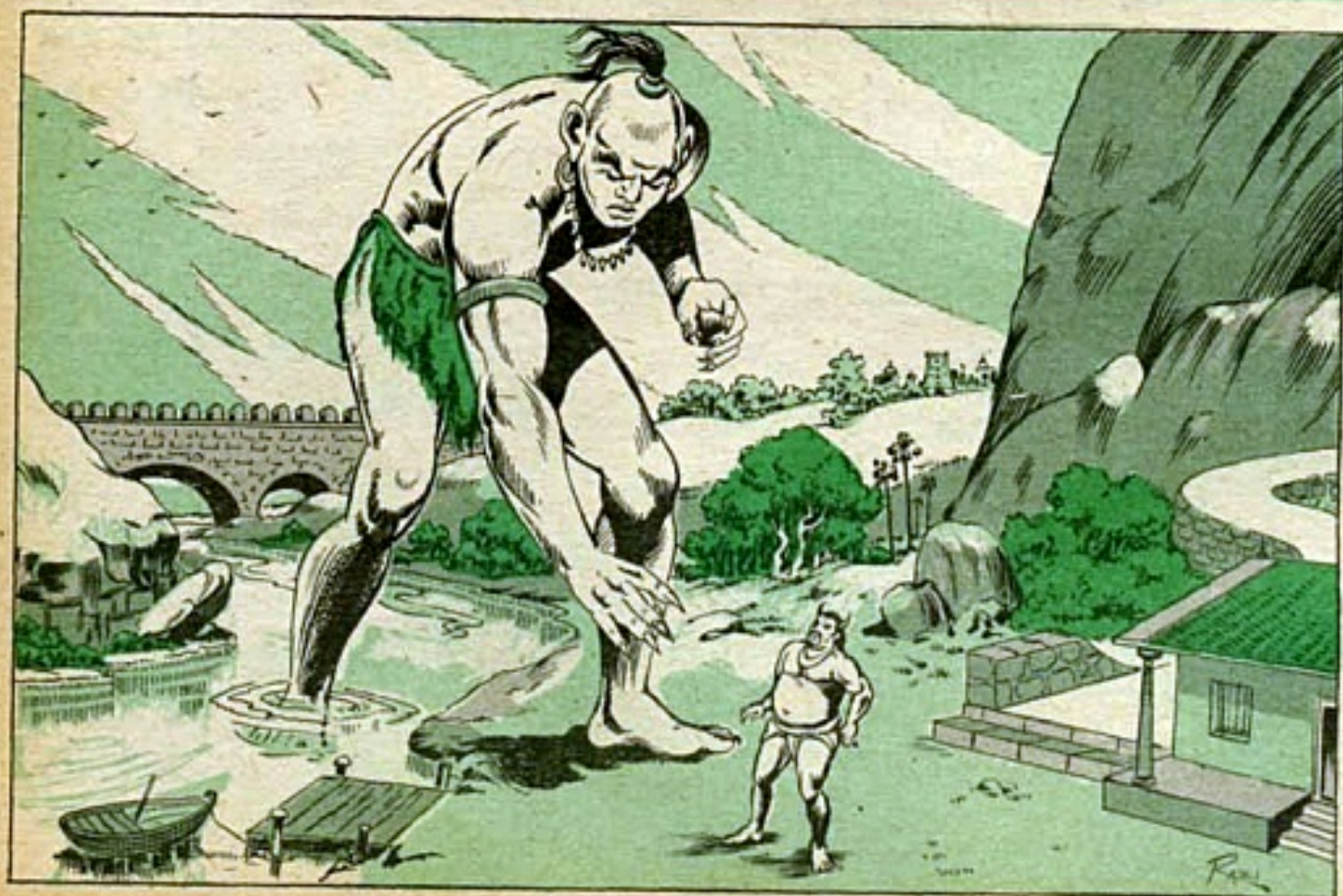
उसी नगर में एक धनवान था। उसके हेमांगी नामक इकलौती पुत्री थी। वह विवाह के योग्य हो चुकी थी। धनवान अपनी पुत्री की शादी करना चाहता था। इस पर कामरूप एक सुंदर युवक के रूप में धनवान के घर पहुँचा और हेमांगी के साथ विवाह करने की अपनी इच्छा प्रकट की। धनवान ने उससे अनेक प्रकार के सवाल पूछे, अंत में अपनी कन्या के साथ उसका विवाह करने से इनकार किया।

तब कामरूप ने अपना असली रूप धारण करके ललकारकर पूछा—"तुम अपनी पुत्री का विवाह मेरे साथ करोगे या नहीं?" धनवान डर के मारे कांप उठा और अपनी पुत्री का विवाह राक्षस के साथ करने को मान लिया।

इस पर राक्षस ठठाकर हँस पड़ा और वहाँ से गायब हो गया। उसे अब मालूम हो गया कि मानवों के भीतर कैसे प्रेम और आदर के भाव हैं।

उसी नगर में शिवानंद नामक एक महान भक्त रहा करता था। उसके घर पर प्रति दिन भजन होता था, लोग भारी संख्या में उसके घर जाया करते थे।

एक दिन अर्द्ध रात्रि के समय कामरूप शिवानंद के घर पहुँचा, अपना वास्तविक रूप दिखाकर पूछा—"तुम रोज जिस ईश्वर की भजन-पूजा करते हो, उसकी निंदा करोगे या नहीं?"

शिवानंद ने राक्षस के पैरों पर गिरकर गिड़गिड़ाया कि उसके द्वारा ऐसा पाप न करावे। पर राक्षस ने नहीं माना। आखिर लाचार हो शिवानंद ने राक्षस के कहे मुताबिक़ ईश्वर को गालियाँ दीं। तब कामरूप वहाँ से गायब हो गया। इस पर उसे मानवों की भक्ति का भी पता चल गया।

इसके बाद कामरूप सीधे विन्ध्याचलों में लौट आया। ऋषि के दर्शन करके बोला—"ऋषिवर, आप ने मानव जन्म को उत्तम बनाया, मगर मानव स्वार्थी हैं। यह बात सच है कि मानव ने सृष्टि के समस्त प्राणियों पर अधिकार कर लिया, सभ्यता की सृष्टि की और सुखमय जीवन बिताते हैं, उनकी ज़िंदगी कृत्रिम है, स्वांग है, नाटक है। वे लोग जिन्हें सही मानकर उनका आचरण करते हैं, उन कार्यों के प्रति भी उनके भीतर विश्वास नहीं है।"

"तब तो बताओ, तुम कैसा जन्म चाहते हो?" ऋषि ने पूछा।

"मैं मानव जन्म ही चाहता हूँ।" कामरूप ने कहा।

ऋषि ने आश्चर्य में आकर इसका कारण पूछा। तब कामरूप ने यों जवाब दिया—"चाहे मानव जीवन को जैसा भी कृत्रिम बतला दे, पर यह जमाना मानवों का है। सब तरह की शक्तियाँ रखते हुए भी इस ज़िंदगी के प्रति मेरे मन में विरक्ति पैदा हो गई है। मगर मैंने देखा, मानवों के अन्दर जीवन के प्रति आशा है, विश्वास है। वे लोग मृत्यु से डरते हैं। पर मृत्यु से बचने के लिए वे अपने विश्वासों को त्याग सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि मानव के भीतर जीवन के प्रति कोई आकर्षण है। यही कारण है कि जीवन भर जीने की कामना रखनेवाला मानव जन्म मुझे सब से ज्यादा पसंद है।"

इस पर ऋषि ने राक्षस पर मंत्र का जल फूंक दिया, वह वहीं पर मर गया और नगर में कहीं मानव के रूप में पैदा हो गया।

परशुराम

ऋचिक के पुत्र तथा विश्वामित्र के भानजे जमदग्नि ने प्रसेनजित की पुत्री रेणुका के साथ विवाह किया। उनके क्रमशः रुमणवंत, सुषेण, वसु, विश्वावसु और राम नाम के पाँच पुत्र पैदा हुए।

रेणुका एक बार पानी लाने नदी पर गई। वहाँ पर चित्ररथ नामक राजा को स्नान करते देख उन पर मोहित हो गई और देर तक वहीं खड़ी रह गई। इसके बाद यह सोचकर डर के मारे पानी भरकर कुटी को लौट आई कि और भी देरी हो जाने से उसके पति नाराज हो जायेंगे।

जमदग्नि ने रेणुका पर चित्ररथ के प्रति मोहित होने का आरोप लगाया और उसे ले जाकर वध करने का अपने पुत्रों को आदेश दिया। लेकिन बड़े चार पुत्रों ने अपनी माता का वध करने से साफ़ इनकार किया, पर राम ने अपने पिता के आदेशानुसार अपनी माता को ले जाकर उसका वध किया और इसकी सूचना अपने पिता को दी।

जमदग्नि ने राम के आज्ञापालन पर प्रसन्न होकर उसे वर माँगने को कहा।

राम ने अपनी माता को जीवित करने का वर माँगा। इस पर जमदग्नि ने रेणुका को जीवित किया। साथ ही राम को यह वरदान दिया कि उसे कभी पराजय प्राप्त न होगी।

वही राम परशुराम हैं और उनका आयुध परसु है।

एक बार परशुराम अपने दादा को देखने की इच्छा से मुनि ऋचीक के आश्रम में गये। वहाँ पर थोड़े दिन बिताकर और्व के आश्रम में गये। और्व

भृगुवंशी च्यवन के पुत्र हैं। वहाँ पर थोड़े दिन बिताकर और्व के यहाँ से विदा लेकर अपने परदादा (जमदग्नि के दादा) भृगु के आश्रम को लौट आये। कहा जाता है कि परशुराम को भृगु के आश्रम में जाते वक़्त उनके तेज को न देख पा सकने के कारण भृगु के सभी शिष्यों ने अपनी आँखें मूंद लीं।

भृगु ने अपने पोते का प्रेम से स्वागत किया। और उन्हें सलाह दी–"बेटा, तुम्हारे, हमारे और जगत के भी उपकार हो जाने का मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ। वह यह है कि तुम हिमालयों में जाकर शिवजी के प्रति तपस्या करो। तुम्हारी सारी कामनाओं की पूर्ति होगी।"

इस पर परशुराम ने हिमालयों में जाकर तपस्या शुरू की। परशुराम की दृढ़ लगन को देख हिमालयों में रहनेवाले सारे मुनि विस्मय में आ गये।

शिवजी ने परशुराम की परीक्षा लेनी चाही, इसलिए बहेलिये के रूप में उनके पास पहुँचकर ललकारा–"तुम कौन हो? यहाँ पर क्यों आये हो?"

परशुराम ने अपनी आँखें खोलीं और विनयपूर्वक उन प्रश्नों का उत्तर दिया।

फिर भी बहेलिया वहाँ से हिला नहीं। तब परशुराम बोले–"भाई, तुम यहाँ पर खड़े रहकर मेरी तपस्या में विघ्न मत डालो। चाहे तो तुम भी मेरे साथ बैठकर तपस्या करो।"

इसके बाद दोनों के बीच थोड़ी देर तक वाद-विवाद हुआ। तब परशुराम ने जान लिया कि यह बहेलिया कोई साधारण मानव नहीं, बल्कि कोई महात्मा हैं, इस पर वे उनके चरणों पर गिर पड़े।

शिवजी ने प्रसन्न होकर परशुराम को उठाया, तब कहा—"बेटा, तुम अभी छोटी अवस्था के हो! रौद्रास्त्र को धारण करने की शक्ति अभी तक तुम्हें प्राप्त नहीं हुई है। इसलिए तुम थोड़े दिन तक तीर्थाटन करके लौट आओ।" यों समझाकर शिवजी अंतर्धान हो गये।

इसके बाद परशुराम ने तात्कालिक रूप से तपस्या रोक दी। तीर्थाटन करके लौट आया और फिर से तप प्रारंभ किया।

उन्हीं दिनों में इन्द्र देवताओं के साथ शिवजी के पास आये और निवेदन किया—"भगवन! दानव हमारे नगर को ध्वंस कर रहे हैं। आप स्वयं आकर हमारी रक्षा करें।"

शिवजी ने महोदर नामक व्यक्ति को पुकारकर परशुराम को बुला लाने का आदेश दिया। शिवजी का आदेश पाकर परशुराम शीघ्र आ पहुँचे।

शिवजी ने परशुराम को आदेश दिया—"राम, मैंने सुना है कि दानव इंद्र के नगर का सर्वनाश कर रहे हैं। तुम अभी जाकर उन्हें भगाओ।"

"भगवन! आप तो जानते हैं कि दानव अत्यंत शक्तिशाली हैं। मैं उन्हें

कैसे पराजित कर सकता हूँ?" परशुराम ने पूछा।

इस पर शिवजी ने एक परशु को राम के हाथ सौंपकर उसके भीतर अपने तेज को भर दिया।

अब राम परशुराम बन गये, इंद्र के नगर में पहुँचकर दानवों को भगाया, उस नगर को देवताओं के हाथ सौंप दिया, तब लौटकर यथा प्रकार फिर से तपस्या करने लगे।

इस पर शिवजी परशुराम की शक्ति और दृढ़ लगन को देख परम आनंदित हुए, और उन्हें बड़े प्रेम के साथ भार्गव अस्त्र प्रदान किया।

इसके बाद परशुराम हिमालयों को छोड़ अपने माता-पिता को देखने चल पड़े। रास्ते में उन्होंने देखा कि एक शेर एक ब्राह्मण बालक पर हमला करने जा रहा है। उस बालक की रक्षा करने के लिए परशुराम ने शेर पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। शेर चोट खाकर गिर पड़ा और वह उसी वक़्त एक गंधर्व के रूप में बदल गया। उसने परशुराम को प्रणाम करके कहा कि वह शाप वश शेर बन गया है, अब उसका शाप विमोचन हो गया है। तब वह गंधर्व लोक को चला गया।

शेर के मुँह से परशुराम ने जिस बालक को बचाया था, उसका नाम अकृतव्रण है जो शांत नामक मुनि का पुत्र था। वह बालक तीर्थाटन करते रास्ता भटककर शेर की आँखों में पड़ गया। परशुराम ने उसकी रक्षा की, इस कारण उसने जिन्दगी-भर परशुराम की सेवा करते उनके शिष्य और मित्र के रूप में अपने दिन बिताये।

इसके बाद परशुराम ने अकृतव्रण को साथ ले क्रमशः भृगु, और्व, ऋचीक मुनि आदि के आश्रमों में जाकर उन्हें आनंदित किया, तब अपने माता-पिता को देखने गये। वहाँ पर उन्होंने अपना सारा वृत्तांत उन्हें सुनाया।

(और है)
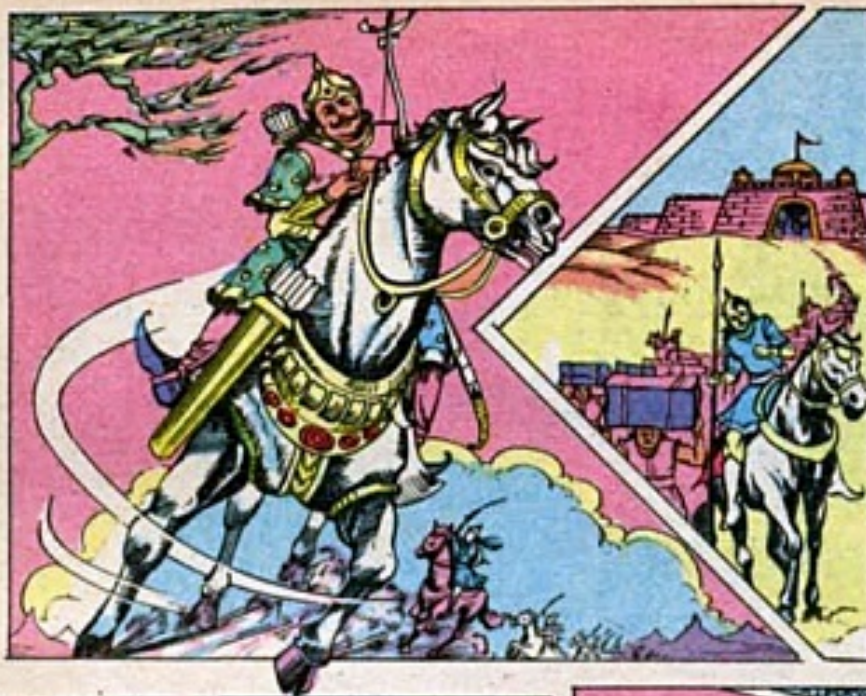
दान की महिमा

पांडव वंशी जनमेजय के पुत्र ही शतानीक थे। शतानीक ने कई देश जीतकर अपने राज्य में मिला लिये और इस प्रकार अपार संपत्ति भी जोड़ ली।

उस संपत्ति का लगातार ब्राह्मणों में दान करके शतानीक ने उनका आदर प्राप्त कर लिया, इस कारण वे लोग सदा-सर्वदा उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।
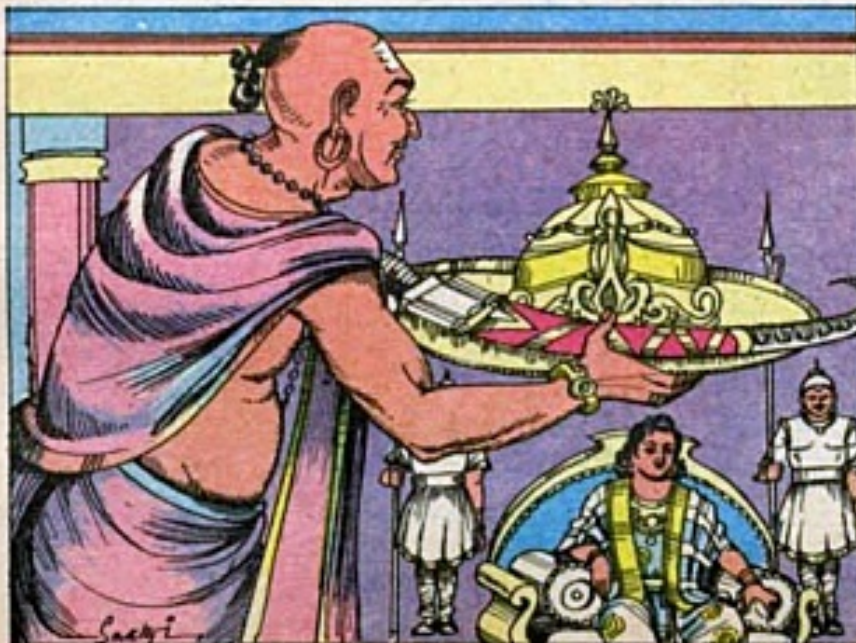
शतानीक के मरने के बाद उनका पुत्र सहस्त्रानीक राजगद्दी पर बैठे। सहस्त्रानीक भी पराक्रमी थे, फिर भी उन्होंने अपने पिता की तरह और देशों पर आक्रमण करने का प्रयत्न नहीं किया।
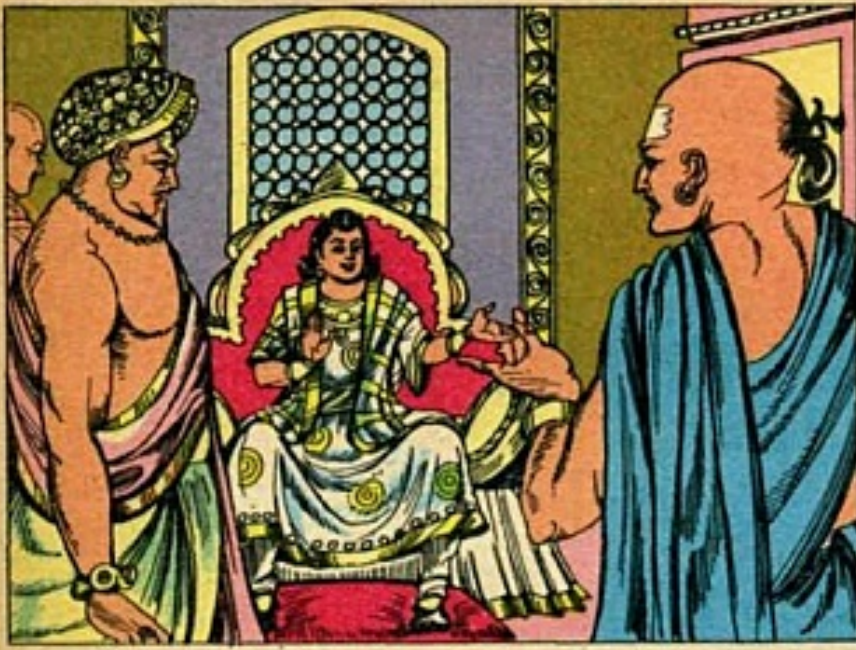
शतानीक के यहाँ से बराबर दान पानेवाले ब्राह्मण सहस्रानिक के व्यवहार पर असंतुष्ट हुए और उन लोगों ने पुराने संप्रदाय को चालू रखने का निवेदन किया ।

इस पर सहस्रानीक ने बताया–"अगर पुराने संप्रदाय ने मेरे पिता का हित किया हो तो मैं भी उस संप्रदाय को चालू रखूंगा ।" इसके बाद उन्होंने महर्षि भार्गव से निवेदन किया कि दान की महिमा से शतानीक का कैसा उपकार किया है, पता लगाकर बतला दे ।

भार्गव महर्षि समाधि में बैठ गये । वे अपनी आत्मा के द्वारा शतानीक की खोज करते स्वर्ग लोक में पहुँचे । पर स्वर्गलोक में उन्हें शतानीक का कहीं पता न चला ।

इसके बाद भार्गव ने नरक लोक में पहुँचकर देखा, वहाँ पर शतानीक से उनकी मुलाक़ात हुई। वे बोले—"मैंने जो पाप किये, उनमें पहला पाप यह है कि मैंने अन्याय पूर्वक धन कमाया, दूसरा यह है कि सुख भोगों में डूबे हुए ब्राह्मणों में ही मैंने दान किया।"

इस पर भार्गव ने सहस्त्रानीक के पास लौटकर यह समाचार सुनाया—"महाराज, न्यायपूर्वक कमाया गया धन ही आप दान करें, ऐसा करने पर आपके पिता शतानीक को उत्तम लोक की प्राप्ति होगी।"

दूसरे ही दिन सहस्त्रानीक अपने राज्य को छोड़ चल पड़े। एक मजदूर के रूप में जीवन बिताते एक साल गुजारा। उन्होंने इस प्रकार जो कुछ धन कमाया, उसे लेकर वे अपने राजमहल को लौट आये।

अपनी थोड़ी-बहुत संपत्ति का ब्राह्मणों में दान करते सहस्त्रानीक बोले– "यह दान तो थोड़ा ही कहा जाएगा, मगर न्यायपूर्वक कमाया गया धन है यह! इसलिए कृपया आप लोग इसे स्वीकार करके ऐसा आशीर्वाद दीजिए जिससे मेरे पिता को उत्तम लोक प्राप्त हो।" ब्राह्मणों ने ऐसा ही किया।

इसके बाद सहस्त्रानीक ने अपना खजाना खुलवाकर अपने पिता के द्वारा कमाया गया सारा धन गरीबों तथा अनाथों में बांट दिया। तब फिर से भार्गव महर्षि को बुलवा कर अपने पिता का हाल जानने का निवेदन किया।
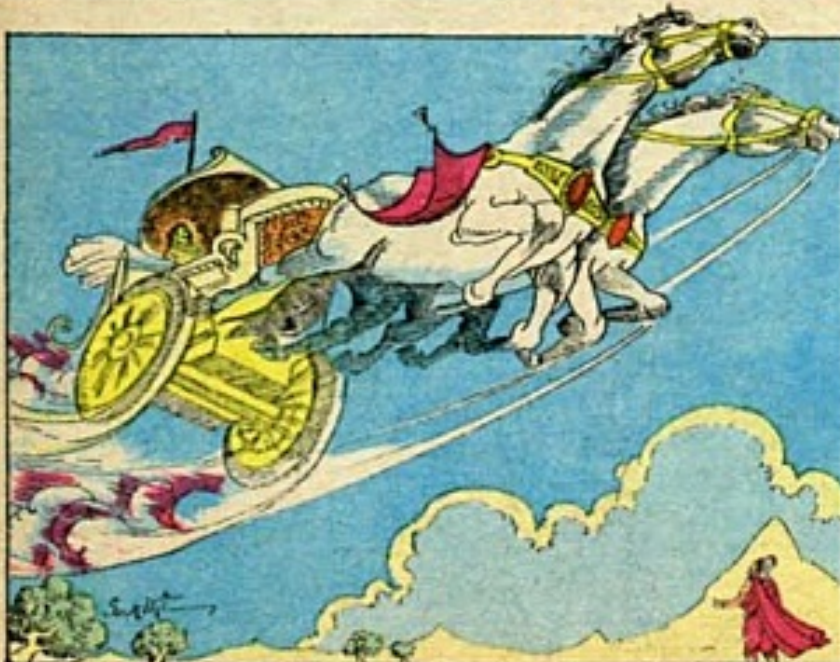
भार्गव दूसरी बार नरक लोक में चले गये, तब तक शतानीक के पापों का परिहार हो गया था। उनको सोने के रथ पर स्वर्ग की ओर रवाना होते देख भार्गव परम आनंदित हुए।

राज्याभिषेक

एक राजा के तीन पुत्र थे। एक बार राजा ने सोचा कि उनके अनंतर कौन राज्याभिषेक के योग्य है, इस बात का पता लगा ले। इस ख़्याल से राजा ने प्रत्येक पुत्र के हाथ एक एक लाख सोने की मुद्राएँ देकर समझाया—"इस धन के साथ तुम में से जो अपनी ज्यादा सामर्थ्य प्रकट करेगा, मैं उसी का राज्याभिषेक करूँगा। तुम लोगों को मैं छे महीनों की मोहलत देता हूँ।"

छे महीने के बाद राजा ने दरबार बुलाया, तीनों पुत्र दरबार में हाज़िर हुए।

बड़े पुत्र ने कहा—"महाराज, मैं इस धन से शास्त्र और धर्म संबंधी ग्रंथ तैयार करवा कर जनता में मुफ़्त बाँट रहा हूँ।"

दूसरे ने बताया—"महाराज, मैं ऐसी प्रक्रिया सीखकर लौटा हूँ जिसके द्वारा जब जहाँ चाहे, वहाँ पर मैं पानी बरसवा सकता हूँ। आइंदा हमारे देश में पानी का अभाव नहीं रहेगा, अकाल न पड़ेगा।"

तीसरे ने कहा—"महाराज! मैंने उस धन से सेनापतियों और सैनिकों को भी अपने पक्ष में कर लिया है। इस वक्त मेरे सैनिक इस राजमहल को घेरे हुए हैं इसलिए आप तुरंत मेरा राज्याभिषेक करवा दीजिए।" राजा ने उसी दिन तीसरे पुत्र का राज्याभिषेक किया।
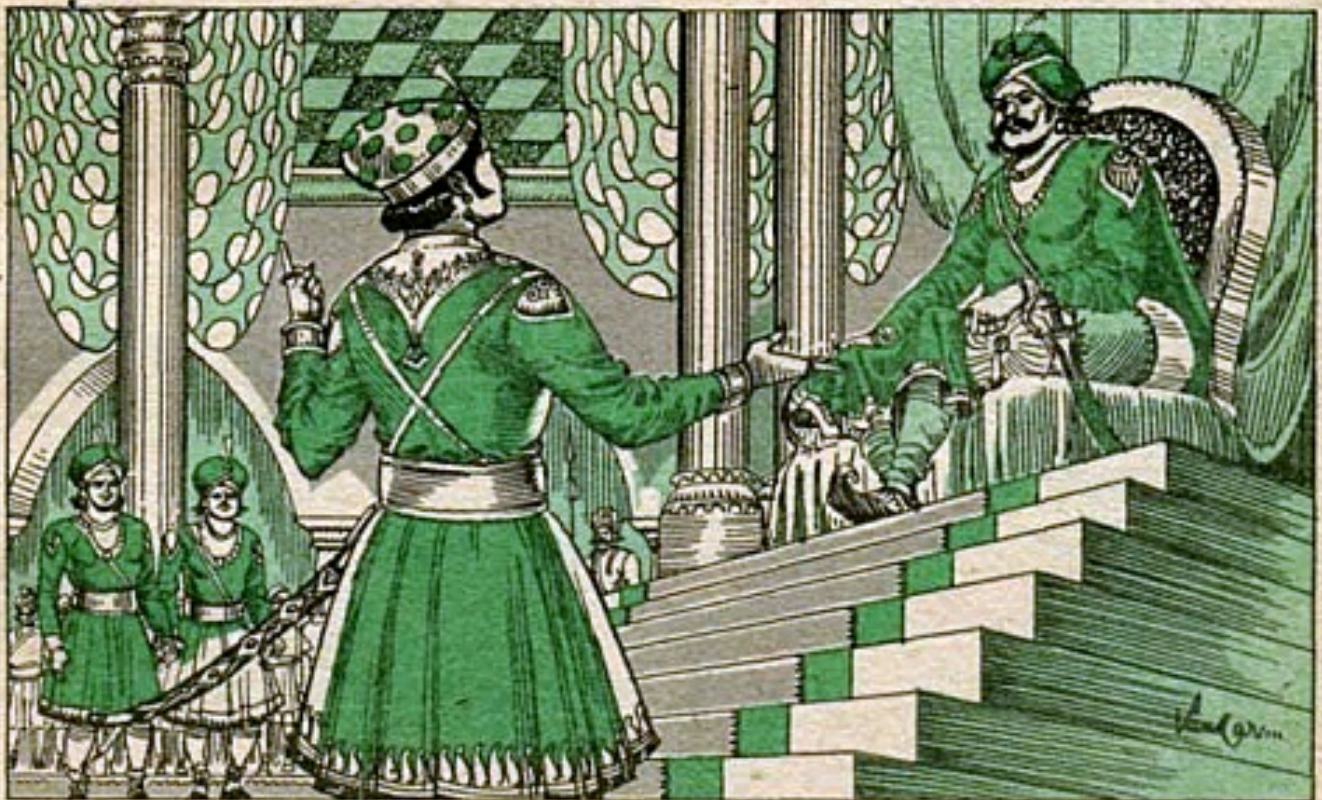
लोभ का फल

रामगुप्त वैसे फुटकर चीज़ों की दूकान चलाता था, साथ ही बकरियाँ भी पालता था। उसकी औरत गहनों और साड़ियों के पीछे पागल थी। बकरियाँ बेचने से जो लाभ होता, उसी से रामगुप्त अपनी औरत के लिए गहने और साड़ियाँ खरीदा करता था। एक बार कोई त्योहार आ पड़ा। रामगुप्त को अपनी औरत के वास्ते साड़ी खरीदनी पड़ी।

इसी ख्याल से रामगुप्त एक बकरी को लेकर हाट में पहुँचा। वह पैसे के मामलों में किसी पर विश्वास नहीं करता था।

हाट के दिन खूब पानी बरसा, इसलिए बहुत कम लोग हाट में आये थे। रामगुप्त की बकरी को बीस रुपये से ज्यादा देकर खरीदने को कोई तैयार न हुआ। वह शाम तक अच्छे भाव के इंतजार में बैठा रहा, आखिर निराश हो बकरी को लेकर घर की ओर चल पड़ा। वह पहाड़ी रास्ता था। गाँव के समीप में पहाड़ के मोड़ पर एक गुफा थी। लोग कहा करते थे कि उसमें भूत निवास करते हैं। गुफा के नजदीक आते ही रामगुप्त का दिल धड़कने लगा।

रामगुप्त जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाते मोड़ को पार कर रहा था, तभी उसे ये शब्द सुनाई पड़े–"कौन है वह? अंधेरा फैलने के बाद भी इस ओर से गुजरने की तुम्हारी कैसी हिम्मत है?"

रामगुप्त थर थर कांपते हुए बोला–"मैं रामगुप्त हूँ। हाट में मेरी बकरी बिकी नहीं, इसलिए इसे अपने घर हांक ले जा रहा हूँ। आइंदा मैं अंधेरे के फैलने के बाद इस ओर नहीं आऊँगा।"

"बकरी को तुम मेरी गुफा में हांककर अपने रास्ते चले जाओ। सवेरे आकर

शीला सेंगर

उसका दाम लेते जाओ।" ये बातें रामगुप्त को गुफा के भीतर से सुनाई दीं।

'जान बची, लाखों पाये' यों सोचते रामगुप्त बकरी को गुफा में हांकर लंबे डग भरते गांव की ओर चल पड़ा। मगर घर जाने की उसकी हिम्मत न पड़ी। उसकी औरत रुपयों के लिए तंग करेगी। भूत से जो कुछ मिलेगा, उसे ले जाने पर ही वह घर में क़दम रखने देगी।

यों सोचकर रामगुप्त सवेरे तक किसी घर के चबूतरे पर लेटा रहा, फिर हिम्मत बटोरकर गुफा की ओर चल पड़ा।

"बकरी का मांस बहुत बढ़िया है। लो, इसका दाम लेते जाओ।" इन शब्दों के साथ गुफा के भीतर से एक पोटली आकर रामगुप्त के पैरों के पास आ गिरी। उसे लेकर रामगुप्त अपने घर की ओर लपका। घर पहुँचते ही रामगुप्त ने किवाड़ बंद किये, पोटली के रुपये फर्श पर डालकर हिसाब लगाया, कुल पचास रुपये थे।

"उस कमजोर बकरी को इतने सारे रुपये चुकानेवाला वह मूर्ख कौन है?" रागुप्त की औरत ने पूछा।

"सुनो, तुम यह बात किसी से मत कहो।" इन शब्दों के साथ रामगुप्त ने सारी बातें अपनी औरत को कह सुनाईं।

रामगुप्त की औरत बोली—"हाँ, ठीक है। मगर तुम भी किसी के कान में मत डालो।" पर उससे कहे बगैर रहा न गया। उसने खुशी में आकर यह खबर पड़ोसिन के कान में डाली। पड़ोसिन ने अपने पति को सुनाई। इस तरह धीरे-धीरे सारे गांव में यह खबर फैल गई।

जो लोग बकरियाँ पालते थे, वे बड़े खुश हुए, जिनके घर बकरियाँ न थीं, उन लोगों ने भी ज्यादा क़ीमत देकर बकरियाँ खरीद लीं। संध्या तक एक की आँख बचाकर दूसरे भूतवाली गुफ़ा में अपनी बकरियाँ हांककर लौट आये। रामगुप्त भी अपनी औरत से तंग आकर दस और

बकरियाँ गुफ़ा के अन्दर हाँक आया। फौ पटी। करीब करीब पच्चीस लोग गुफ़ा के सामने जमा हुए। मगर किसी को भी बकरियों का दाम नहीं मिला। भूत की आवाज़ भी उन्हें सुनाई नहीं दी।

पूरब में सूरज उग आया।

सब लोग हिम्मत करके गुफ़ा के भीतर पहुँचे। पर गुफ़ा में एक भी बकरी न थी। लेकिन गुफ़ा के बीच एक चट्टान पर एक कागज़ का टुकड़ा मिला। उस पर यों लिखा हुआ था:

"यह पत्र लिखनेवाला प्राणी कोई भूत नहीं, आप लोगों जैसा एक मानव है। काम की खोज में महीने भर आप लोगों का चक्कर काटनेवाला शिवसागर हूँ मैं। मेरे पिताजी का स्वर्गवास हो गया है। मेरे घर में सिर्फ़ सौ रुपये बचे थे। उस रक़म को लेकर मैं आप के गाँव में पहुँचा, आप लोगों से काम माँगा, आप लोगों ने कहा—"तुम नये आदमी हो, तुम पर विश्वास करके हम काम कैसे दे सकते हैं?" इस बीच आधी रक़म खर्च हो गई। दूसरे गाँव में जाने के ख्याल से उस दिन शाम को इस भूतवाली गुफा में लेट गया। बकरी के साथ गाँव लौटनेवाले रामगुप्त को देखते ही मेरे मन में यह उपाय सूझा। आप लोगों ने आदमी पर विश्वास नहीं किया, पर इस भूत पर विश्वास किया। जो भूत है ही नहीं, उसने मेरा बड़ा उपकार किया। काम करने का आश्वासन देने पर पैसा तक न देनेवाले आप लोग मुफ़्त में पैसे मिलने की बात पर विश्वास करके दल बांधकर आये। अब मेरे भीतर यह विश्वास जम गया है कि इन बकरियों को बेचने पर जो धन मिलेगा, उस धन से कहीं व्यापार शुरू करके एक साल के भीतर आप लोगों का ऋण चुका सकूंगा; तब तक कृपया आप लोग सब्र कीजिए।"

यह पत्र पढ़वाकर जिन लोगों ने उसका अर्थ समझा, वे लोग एक दम अवाक् रह गये।

दस्तख़त

सूरजगढ़ और चन्द्रगिरि के बीच के जंगलों में नरसिंग नामक एक डाकू का बोलाबाला था। लोगों का कहना था कि उस डाकू के अनुचर दोनों देशों के दरबारों में फैले हैं।

एक बार चन्द्रगिरि के राजा ने सूरजगढ़ के राजा से एक लाख सोने की मोहरें उधार माँगी। सूरजगढ़ के राजा ने उधार देने को मान लिया। दूसरे ही दिन चन्द्रगिरि के दरबार के खजांची मोहरें लाने के वास्ते रवाना होनेवाला था। ख़बर मिलते ही नरसिंग रात के वक्त चन्द्रगिरि राज्य के एक गुरुकुल में पहुँचा। वहाँ के आचार्य को जगाकर धमकी दी कि अगर उसे रातों रात खजांची का दस्तख़त न सिखला दे तो उसे मार डाला जाएगा। उसने आख़िर आचार्य से खजांची का नाम लिखने का ढंग सीख लिया।

दूसरे दिन चन्द्रगिरि का खजांची अपने सैनिक दल के साथ जंगल के रास्ते सूरजगढ़ जाते नरसिंग के दल के हाथ बन्दी बना। खजांची के पास राजमुद्रिकावाला पत्र था। उसमें राजा ने ऋण-पत्र लिखा था। डाकू नरसिंग ने खजांची और उसके सैनिकों को बन्दी बनाया, उसने खुद खजांची की पोशाकें पहन लीं और अपने अनुचरों को सैनिकों की पोशाकें पहनवाकर सूरजगढ़ के दरबार में पहुँचा। चन्द्रगिरि के राजा ने सूरजगढ़ के राजा का पत्र पढ़कर नरसिंग को गिनकर एक लाख मोहरें दे दीं और रसीद भी ले ली।

नरसिंग ने दस्तख़त करके मोहरें लीं, मगर वह सूरजगढ़ के राजा के हाथ बन्दी बना।

क्योंकि नरसिंग ने दस्तख़त की जगह अपना ही नाम लिखा था, इसकी वजह यह थी कि आचार्य ने उसे वही दस्तखत सिखलाया था।

आजीविका

एक शहर में एक पढ़ा-लिखा आदमी था। वह बड़ा ही गरीब था। उसने राज दरबार में नौकरी पाने की बड़ी कोशिश की, मगर उसे राजा के दर्शन नहीं हुए।

उसे जीना जरूरी था। कहा जाता है कि सारी विद्याएँ आखिर पेट भरने के लिए ही होती हैं। उनमें से किसी एक विद्या का वह आश्रय न ले तो उसकी जीविका न चलेगी।

एक दिन उसने देखा कि शहर से दूर पर जंगल के समीप में दो मखबरे हैं। उनके चारों तरफ़ बांबियाँ और झाड़ियाँ उग आई हैं। उन मखबरों को देखते ही उस शिक्षित व्यक्ति के दिमाग में कोई विचार आया। उसने बड़ी मुश्किल के साथ मखबरों के चारों तरफ़ उगे झाड़-झंखाड़ों को साफ़ किया, उसे समतल बनाया, रंगोली सजाई, मखबरों पर तुलसी के पौधे रोप दिये, समाधियों को फूलों से सजाकर रोज़ उनकी पूजा करने लगा।

शहर के लोग शहर के मंदिर में जाते वक़्त तथा जंगल के रास्ते से पड़ोसी गाँवों में जाते समय भी उन समाधियों को देख आश्चर्य में आ जाते। वहाँ पर रुक जाते और वहीं पर कुटी बनाकर निवास करनेवाले उस शिक्षित व्यक्ति से पूछ बैठते तो शिक्षित व्यक्ति यही जवाब देता–

"ये समाधियाँ राजा के पुरखों की हैं। ये उजड़ गई थीं। राजवंश के प्रति मेरे मन में आदर का भाव है। इसलिए इनका उद्धार करके इनकी पूजा कर रहा हूँ।"

शिक्षित व्यक्ति की बातों पर लोगों ने विश्वास किया। क्योंकि समाधियों पर सफ़ेद चूना पोत दिया गया था। उन पर

गणेश शंकर

तुलसी के पौधे थे और दीप जलाये गये थे। यदि ये समाधियाँ राजवंश की न हों तो यह व्यक्ति उनके प्रति ऐसी श्रद्धा और भक्ति क्यों प्रदर्शित करता?

उस दिन से शहर के लोग भी उन समाधियों के प्रति श्रद्धा और भक्ति दर्शाने लगे। वे लोग भी भीड़ बांधकर समाधियों की पूजा करने इस तरह आ जाते जैसे मंदिर में जाते हैं। वे लोग समाधियों पर दीप जलाने के वास्ते तेल और पैसे भी देने लगे। कुछ लोग श्रद्धा के साथ समाधियों की परिक्रमा करके मनौतियाँ भी करने लगे।

शिक्षित व्यक्ति ने धीरे-धीरे लोगों में यह प्रचार किया कि जो लोग समाधियों के सामने प्रणाम करके परिक्रमा करते हैं उनकी इच्छाओं की पूर्ति हो रही हैं। फिर क्या था, जल्द ही वे समाधियाँ यात्रा के स्थान बन गईं।

यह खबर राजा के कानों तक पहुँची। इस पर राजा ने मंत्री को आदेश दिया कि वह इस बात का पता लगावे, कि वे समाधियाँ सचमुच राज परिवार की हैं या नहीं? अगर राज परिवार की हों तो आज तक वे अज्ञात में क्यों रह गईं?

मंत्री ने समाधियों का सही समाचार जान लेने के लिए कुछ अधिकारियों को भेजा। उन लोगों ने समाधियों की जांच करके पता लगाया कि उन पर दो नाम खुदे हुए हैं, साथ ही कोई चिह्न अंकित हैं।

पर इनके आधार पर वे लोग किसी निर्णय पर पहुँच न पाये, तब राजा ने अपना वंश वृक्ष मँगवा लिया और उसकी जांच करने का आदेश दिया।

अंत में स्पष्ट हुआ कि चौदह पीढ़ियों के पूर्व उन नामवाले पति-पत्नी ने उस देश पर शासन किया था। समाधियों पर जो चिन्ह थे वे भी उस समय के राजवंश के थे।

राजा ने कहा—"हमारे वंश की प्रतिष्ठा का उद्धार करनेवाले इस व्यक्ति को हम

जो भी पुरस्कार देंगे, वह थोड़ा ही होगा।" इसके बाद उस शिक्षित व्यक्ति को बुलवाकर राजा ने पूछा–"तुमने किस आधार पर इस बात का पता लगाया कि वे समाधियाँ राजवंश की ही हैं?"

"महाराज, मैंने वास्तव में इनका पता नहीं लगाया। किसी भी प्रकार से जब आपके दर्शन नहीं हुए तब मैंने इन समाधियों को अपनी आजीविका का साधन बनाया। मैंने नहीं सोचा था कि मेरा यह धोखा आप पर प्रकट होगा। मुझे माफ़ कर दीजिएगा। मैं अपने इस धोखे का परिचय लोगों को देकर अपनी आजीविका का कोई दूसरा रास्ता ढूंढ़ लूंगा। मैं जन्म से कंगाल हूँ। शिक्षा तो पा सका, मगर धन कमा नहीं पाया।" उस शिक्षित व्यक्ति ने विनय पूर्वक जवाब दिया।

"तुमने किसी को भी धोखा नहीं दिया। हमने पूरी जांच करवाई हैं। वे तो सचमुच राजवंश की ही समाधियाँ हैं। उन दिनों में राजवंश के भीतर कलह पैदा हुआ, जिस कारण समाधियों की बात भुलाई गई। तुमने अनजान में ही सही, उनका उद्धार करके हमारा उपकार किया। लेकिन यह बताओ कि तुम राजा के दर्शन किसलिए करना चाहते थे?" राजा ने पूछा।

"महाराज, मैंने बता दिया कि मैं एक जन्मजात दरिद्र हूँ। पर मैंने सोचा कि मैंने जो शिक्षा पाई, वह आप के दरबार में छोटी-मोटी नौकरी पाने के लिए उपयुक्त होगी। मगर मेरी आशा पर पानी फिर गया।" शिक्षित व्यक्ति ने गहा।

"तुम्हारी आशा जरूर सफल होगी। तुम्हें एक अच्छी नौकरी के साथ जागीरी भी दिलवा दूंगा।" राजा ने आश्वासन दिया।

इस प्रकार संयोग से वह शिक्षित व्यक्ति अपनी आजीविका की खोज में राजवंश का बड़ा उपकार करके लोकप्रिय बना।

लोभ

एक दिन एक व्यापारी हाट की ओर चल पड़ा। रास्ते में मजदूर रंगदास से उसकी मुलाक़ात हुई। उस दिन व्यापारी को बड़ा नफ़ा हुआ। व्यापारी ने सोचा कि सवेरे रंगदास का चेहरा देखने पर ही उसे नफ़ा हुआ, उसने खुश होकर रंगदास को थोड़े रुपये दिये।

यह रहस्य मालूम होने पर रंगदास रोज सवेरे व्यापारी के सामने आ गुजरता, रोज व्यापारी को थोड़ा-बहुत लाभ होता और व्यापारी रंगदास को पैसे दे देता।

इस कारण रंगदास के मन में यह लोभ पैदा हुआ कि उसी की वजह से व्यापारी को लाभ होता है। एक दिन वह व्यापारी के सामने न आया, उस दिन व्यापारी को लाभ न हुआ।

एक दिन रंगदास ने व्यापारी के घर जाकर कहा–"मेरे कारण आप रोज लाभ उठाते हैं, अगर आप मुखिये के पास यह समझौता कर ले कि लाभ में से मुझे भी आधा हिस्सा देंगे, तभी मैं आप के सामने से आ गुजरूँगा।" व्यापारी ने रंगदास की शर्त मान ली।

एक दिन अचानक पानी बरसने से सारा माल भीग गया और व्यापारी को बड़ा नुक़सान हुआ। उस दिन व्यापारी ने मुखिये के पास जाकर बताया कि उसे व्यापार में बड़ा नुक़सान हो गया है, इसलिए उसमें आधा हिस्सा रंगदास को भी बांट लेना होगा। इस पर लाचार होकर रंगदास ने आधा हिस्से का नुक़सान भर दिया।

दूर के ढोल...

मोतीसिंह के घर गाड़ियाँ भरकर धान के आते देख मोतीसिंह के लड़के से पड़ोसी घर का लड़का रामगोपाल ईर्ष्या में आकर बोला–"अरे, तुम लोगों की ज़िंदगी राजा की ज़िंदगी है। तुम्हें असल में किस बात की कमी है? मनचाही पैदावर, घर भर के लोगों के लिए दूध, दही और तुम्हारा किले जैसा मकान...।"

मोतीसिंह का लड़का जनार्दन हंसकर बोला–"अबे रामगोपाल! तुम तो बेकार बैठे हो? हमारे साथ खेत में आकर काम क्यों नहीं करते? रोज तुम्हें तीन रुपये की मजूरी मिलेगी।" रोज तीन रुपये मजूरी की बात सुनते ही रामगोपाल के मन में आशा जगी। गरमी का मौसम बीत गया। मृगशिरा नक्षत्र में खेतों में पत्तों की खाद देनी थी। रामगोपाल दो दिन गाड़ी में पत्तों की खाद ले गया। छाता लेकर धूप में खड़ा रहा और खेतों में पत्तों की खाद डलवाई। दो दिन की मजूरी जनार्दन ने रामगोपाल को छे रुपये दिलवायी। साथ ही दुपहर के वक़्त खेत की मेंड पर उसे नौकर ने नारियल का जो ढाब पिलाया था, वह बड़ा ही मीठा था। इस कारण उसे खेत का काम बहुत ही आसान मालूम हुआ।

तीन सप्ताह बाद पानी से भरे खेत को जोतने का काम शुरू हुआ। मोतीसिंह ने रामगोपाल को समझाया कि वह अपनी निगरानी में यह काम करवा दे। रामगोपाल जब खेत की ओर चल पड़ा, तब पानी बरसा। मेंड़ों पर से खेत में जाते दो-तीन दफे रामगोपाल कीचड़ में फिसलकर गिर पड़ा। दूसरे दिन वह लाठी और छाता लेकर बड़ी मुश्किल से

नंदकुमार पाठक

खेत में जा पाया। वह तो बरसात का मौसम था, कब पानी बरसता है, कुछ पता न था। चाहे जो हो, एक हफ़्ते तक तकलीफ़ उठाकर वह खेत जुतवा पाया।

इसके बाद तीन दिन तक रोज सौ मजदूरों को लगाकर उसे निराई का काम करवाना पड़ा। उन दिनों में वह प्रति दिन सवेरे नौ बजे खेतों में पहुँच जाता और शाम को छे बजे घर लौटता था। मोतीसिंह ने रामगोपाल को कुल दस दिन का हिसाब लगाकर तीस रुपये दे दिये।

पानी में बराबर चलते रहने के कारण उसके पैर रगड़ खाकर खुजलाने लगे। बरसात में भीगने से जुकाम हो गया और दो दिन बुखार भी आया।

मोतीसिंह के खेत में नये क़िस्म के धान रोपे गये थे, इस वजह से नब्बे दिनों में ही फसल कटाई के लिए तैयार हो गई। कटाई के वक़्त रामगोपाल को मदद करने बुलाया गया। रात के वक़्त धान की चोरी होने से बचाने के लिए खेत में तीन तरफ़ छोटी कुटी बनाकर लोग पहरा देने के लिए लेटा करते थे।

जाड़े का मौसम होने की वजह से चमड़ा चिर जाता था, साथ ही कुटी में कुहरा पहुँच जाता जिससे वे लोग थर थर कांप उठते थे। इस तरह पूरी कटाई का काम आठ दिन तक चलता रहा। रामगोपाल को क़रीब चौबीस रुपये हाथ लगे।

अब राम गोपाल की समझ में आया कि किस तरह किसान तक़लीफ़ उठाते हैं। जब सिर्फ़ निरीक्षण करनेवालों को ही ऐसी तक़लीफ़ होती है तब सचमुच खेत में काम करनेवाले किसानों और मजदूरों को कैसी तक़लीफ़ उठानी पड़ती होगी, रामगोपाल ने भांप लिया।

इसके बाद संक्रांति पर्व के पहले दायें चलाते वक़्त रामगोपाल को दस दिन तक खेत का पहरा देने जाना पड़ा। साथ ही खलिहानों में धान की चोरी होने से बचाना जरूरी था।

एक दिन रात को चोर खेत में घुसकर खलिहान में से कटी फ़सल के ढेर के नीचे से चार बोरे धान उठा ले जाने लगे। इसका पता लगाकर किसान, नौकर आदि ने चोरों पर हमला किया, चोर धान के बोरों को छोड़ भाग गये।

वास्तव में वे लोग चोर नहीं थे, रामगोपाल को डराने के लिए मोतीसिंह के द्वारा नियुक्त उसी के आदमी थे।

आखिर गाड़ियों पर लदकर धान घर पहुँचा। धान कुठलों में भर रहे थे। तब जनार्दन ने रामगोपाल से पूछा–"अरे रामगोपाल, अब बतला दो, खेतीबाड़ी कैसी होती है? तुम्हें याद है न कि तुमने पिछले साल क्या कहा था?"

रामगोपाल ने कहा–"गाड़ियों पर लदकर धान के तुम्हारे घर पहुँचते जब मैंने देखा, उस वक़्त मैंने यह नहीं सोचा कि इस पैदावार के पीछे इतनी सारी मेहनत करनी पड़ती है? तुम्हारी मेहर्बानी से तकलीफ़ उठाकर काम करने की आदत मुझे भी हो गई।"

इस पर जनार्दन मुस्कुराकर बोला– "अरे, दूर के ढोल सुहावने होते हैं। अब तुम समझ गये हो न कि कितनी मेहनत करने के बाद हम यों सुख भोगते हैं!"

उस दिन से रामगोपाल गाँव के बड़े-बड़े मोतबर किसानों की खेतीबाड़ी में मदद देते अपना पेट भरने लगा, साथ ही वह अपने पैरों पर आप खड़े होने की हालत में पहुँचा।

प्राचीन काल में त्वष्टू प्रजापति समस्त देवताओं में महान थे और बड़े तपस्वी भी थे। उन्होंने इन्द्र पर रुष्ट होकर तीन सरवाले विश्वरूप की सृष्टि की। विश्वरूप जब बढ़ता गया, तब वह अपने तीन सिरों के साथ तीन अलग-अलग काम करने लगा जिसे देख मुनि भी प्रसन्न हो उठे। वह अपने एक मुँह से वेद-पाठ करता, दूसरे मुँह से ताड़ी पीता और तीसरे मुख से विश्व में होनेवाली सारी बातों का अवलोकन करता।

विश्वरूप पाँच अग्नियों के बीच तप करता। एक ही पैर पर खड़े हो, जाड़े में, पानी में, गरमी के मौसम में अग्नियों के बीच रहकर निराहारी हो तप करता, इसे देख इन्द्र ने सोचा कि उनका पद हड़पने के लिए विश्वरूप तपस्या कर रहे हैं, इन्द्र ने उनका तपोभंग करना चाहा, इस वास्ते रंभा, मेनका और ऊर्वशी को बुलवाकर उन्हें आदेश दिया–"हे सुंदरियो, तीन सिरोंवाला व्यक्ति मेरे पद को हड़पने के लिए तप कर रहा है। तुम लोग किसी भी तरह से सही, उसके तप को भंग करके इस कार्य में मेरी सहायता करो। तुम लोग अपने को अच्छी तरह से सजाकर अपनी नृत्य और गान कलाओं का प्रयोग करके विश्वरूप को कामदेव का शिकार बना दो।"

इन्द्र के ये वचन सुनकर अप्सराएँ उनसे बोलीं–"हम लोग उस मुनि को अपने

नाज-नखरों तथा तिरछी नज़रों से पल भर में अपने दास बना लेंगी।" यों कहकर वे सब विश्वरूप के आश्रम में पहुँचीं।

अप्सराएँ जब विश्वरूप के सामने अनोखे अभिनय करते उन्हें लुभाने की कोशिश करने लगीं, तब विश्वरूप अंधे, बहरे व गूंगे की तरह अविचल बैठे रहें।

अप्सराओं ने कुछ दिन तक नाच-गान किया, फिर भी विश्वरूप को स्थिर देख वे आश्चर्य में आ गईं। आखिर इन्द्र के पास जाकर बोलीं—"भगवन, हमारे सारे प्रयत्न उस मुनि के आगे बेकार साबित हुए। हमने उन्हें उकसाने की सब तरह से कोशिश की। कोई कसर अपनी ओर से उठा न रखी, पर कोई फ़ायदा न रहा। अच्छा हुआ कि उन्होंने हमें शाप न दिया, वरना हम आप तक पहुँच नहीं पातीं।"

इस पर इन्द्र ने उस महात्मा विश्वरूप का वध करने का निश्चय किया। पर उन्होंने यह नहीं सोचा कि यह कैसा महान पाप है! इन्द्र ऐरावत पर सवार हुए, विश्वरूप जहाँ पर समाधि में बैठे हुए थे, वहाँ पहुँचकर उन्होंने उन पर अपने वज्रायुध का प्रयोग करके मार डाला।

इसे देख मुनियों ने कहा—"न मालूम इन्द्र के कैसे बुरे दिन निकट आये हैं। एक पुण्यात्मा को मार डाला, इसका फल वे ज़रूर भोग लेंगे।"

विश्वरूप का संहार करके इन्द्र अपने नगर को वापस गये, मगर उनके मन में एक संदेह बना रहा। मृत विश्वरूप फिर से तो ज़िंदा न हो जायेंगे? क्योंकि वज्रायुध के प्रहार से मरने के बाद भी विश्वरूप का तेज वैसा ही बना रहा।

इस शंका से प्रेरित हो इन्द्र ने बढ़ई को बुलाकर आदेश दिया—"सुनो, विश्वरूप के मरने पर भी उनके चेहरे पर तेज दमक रहा है। वह फिर से ज़िंदा न हो जाय, इसलिए उसके सर काट डालो।"

इस पर बढ़ई ने पूछा—"यह क्या कहा? विश्वरूप वज्रायुध के प्रहार से मर गये?

मृत व्यक्ति का वध करके मैं अपने सिर पाप मोल लूं? मैं नहीं जानता कि आप ने अकारण ही उनका वध क्यों किया है? फिर भी मेरा संदेह है कि मृत व्यक्ति के सर को काट डालने की जरूरत ही क्या है? उनसे आप डरते क्यों हैं?"

"वह तो एक महान मुनि है। फिर भी क्या हुआ? वह मेरा शत्रु है। शत्रु का वध करना अपना कर्तव्य होता है, वह मरकर भी ज़िंदा व्यक्ति जैसे दिखाई दे रहा है। कहा जाता है न कि अग्नि, ऋण और शत्रु का शेष नहीं होना चाहिए।" इन्द्र ने समझाया।

ये बातें सुन बढ़ई ने इन्द्र से पूछा—"आप ने निरपराधी और ब्रह्म तेजवाले व्यक्ति का वध किया। इस कारण आप को ब्रह्महत्या के दोष का भय नहीं होता?"

"मैं शत्रु से ज़्यादा ब्रह्महत्या के दोष से नहीं डरता। इस तरह के पाप से किसी प्रकार मुक्ति पा सकते हैं। मगर शत्रु-शेष का कोई प्रायश्चित्त नहीं है न? इसलिए शत्रु का अंत करने के लिए कोई भी पाप किया जा सकता है।" इन्द्र ने समझाया।

"ऐसे पापपूर्ण कार्य के लिए न मालूम किस प्रकार के लोभ ने आप को प्रेरित किया? मगर मुझे प्रेरित कर सकनेवाला कोई लोभ नहीं है। ऐसी हालत में मुझ इस प्रकार का पाप क्यों करना है?" बढ़ई ने फिर पूछा।

"अगर तुम ऐसा मानते हो, तो आज से तुम्हें यज्ञ का अंश दिलाऊँगा। यज्ञ में बलि दी जानेवाले पशु का सिर आइंदा तुम्हारा ही होगा।" इन्द्र ने बढ़ई को प्रलोभन दिखाया।

ये बातें सुनने पर बढ़ई ने अपनी कुल्हाडी से विश्वरूप के सर काट डाले। पर आश्चर्य की बात थी कि जब एक-एक सर कटकर नीचे गिरता गया, तब प्रत्येक सर से एक-एक प्रकार के हज़ारों पक्षी बाहर निकलकर उड़ गये। वेद पाठ

करनेवाले मुँह से कपिंजल पक्षी, विश्व का अवलोकन करनेवाले मुख से तीतर पक्षी तथा ताडी पीनेवाले मुँह से गवरैये निकल पड़े ।

इसके बाद अपने कार्य पर संतुष्ट हो इन्द्र ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होने के प्रयत्न करने लगे ।

अपने पुत्र की हत्या का समाचार सुनकर त्वष्टू प्रजापति इन्द्र पर क्रुद्ध होकर बोले–"हे देवताओ, क्या तुम लोगों ने इस अत्याचार को देखा? किसी की हानि किये बिना तप करनेवाले मेरे पुत्र का इन्द्र ने वध किया । उसका संहार करने के लिए मैं एक पराक्रमी पुत्र पैदा करने जा रहा हूँ ।" इन शब्दों के साथ प्रजापति ने अथर्वण मंत्रों का उच्चारण करके अग्नि प्रज्वलित की और तब अग्नि की भांति प्रकाशमान एक शिशु अग्नि के भीतर से उत्पन्न हुआ ।

त्वष्टू ने उस शिशु को देख आदेश दिया–"तुम्हारे जन्म लेने से क्या फ़ायदा? तुम इसी वक़्त बड़े होकर इन्द्र का अंत कर डालो ।"

इस पर वह शिशु पर्वत जैसे विशाल बना, काल मृत्यु का रूप धारण कर देवताओं को कंपानेवाले स्वर में बोला– "मेरा नाम क्या है? मुझे क्यों पैदा किया? पिताजी, आप का दुख क्या है? आप के मन में चाहे किसी भी प्रकार की असाधारण कामना हो, मैं उसकी पूर्ति करूँगा । अपने पिता की इच्छा की पूर्ति न कर सकनेवाले पुत्र से बढ़कर कोई नीच व्यक्ति न होगा न?"

इस पर त्वष्टू ने समझाया–"तुम्हारा नाम वृत है! वेदों का ज्ञाता और तीन सिरवाले तुम्हारे भाई विश्वरूप का इन्द्र ने वध किया है । तुम इन्द्र का अंत करने के लिए पैदा हुए हो । तत्काल तुम यह काम संपन्न करो ।" यों आदेश देने के बाद त्वष्टू ने तरह-तरह के आयुध तैयार किये। एक रथ देकर एक शुभ मुहूर्त में ब्राह्मणों

के आशीर्वाद दिलाकर इन्द्र को मारने के लिए उसे भेजा।

यह समाचार यथाशीघ्र इन्द्र को मालूम हुआ। दूतों ने इन्द्र को बताया–"भगवन, त्वष्टू प्रजापति ने आप का संहार करने के लिए एक पर्वताकृतिवाले वृत्र की सृष्टि करके भेज दिया है। वह अत्यंत बलवान राक्षसों को साथ लेकर चला आ रहा है।" इसी समय देवताओं ने वृत्र को स्वयं देखा, घबराकर इन्द्र के पास दौड़े आये और बोले:

"भगवन, अत्यंत भयंकर अपशकुन हमारे नगर में दिखाई दे रहे हैं। कौए, उल्लू और गीध चिल्ला रहे हैं। मकानों पर राक्षसों की पुकारें सुनाई दे रही हैं। नारियाँ दुस्वप्न देख रही हैं।"

अपशकुन की बातें सुन इन्द्र डर गये, बृहस्पति से उन्होंने पूछा–"गुरुदेव! इन अपशकुनों की शांति कैसे हो सकती है?"

"तुमने अकारण एक निरपराधी श्रेष्ठ मुनि की हत्या करके क्या पाया? वह पाप क्या तुमको यूं ही छोड़ देगा? कोई भी कार्य करते समय आगा-पीछा सोचना चाहिए। वरना हमारा जीवन अनर्थों का शिकार होगा। तुमने मोह और लोभ के वशीभूत हो ब्रह्महत्या के पाप को जान-बूझकर मोल लिया है। भारी पैमाने

पर किये जानेवाले पाप और पुण्यों का फल तत्काल मिल जाता है। दूसरों को कष्ट देनेवालों को कभी सुख प्राप्त नहीं होता? तुम्हारे लिए विपत्तियों का समय निकट आ गया है। ये वृत्र जो हैं, महान शक्तिशाली हैं। आसानी से इनकी मृत्यु न होगी। इनको त्वष्टू ने आयुध भी दिये हैं। उनमें से किसी भी आयुध की तुलना तुम्हारा वज्रायुध नहीं कर सकता। उनकी महिमा ही कुछ ऐसी है।" बृहस्पति ने समझाया।

इन्द्र की हत्या करने के लिए वृत्र के जाने का समाचार सुनकर मुनि, यक्ष और देवता घबराकर भाग गये। यों घर-द्वार

छोड़ भागनेवाले देवताओं को देख इन्द्र चिंता में पड़ गये और अपने सेवकों को बुलाकर बोले–"तुम लोग इसी वक़्त जाकर रुद्र, आदित्य, वसु और दिक्पालों को विमानों पर युद्ध के लिए तैयार होकर आ जाने को कह दो।"

इसके बाद इन्द्र भी स्वयं बृहस्पति को अपने हाथी पर बिठाकर युद्ध के लिए चल पड़े। उनके पीछे आयुध धारण कर देवता भी निकल पड़े। वृत्र भी दानव सेना के साथ आ पहुँचे। दोनों पक्षों की सेनाएँ मानस सरोवर की उत्तरी दिशा में स्थित पर्वत पर आमने-सामने हुईं। थोड़ी ही देर में युद्ध प्रारंभ हुआ।

सौ वर्षों तक युद्ध चलता रहा। इस कारण सारे लोक परेशान हो उठे। सबसे पहले वरुण भाग गये, इसके बाद क्रमशः वायुगण, यम तथा प्रकाश को खोकर अग्नि भी चले गये। इन्द्र को भी पलायन करना पड़ा। आखिर वृत्र सारे देवताओं को पराजित कर अपने पिता के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम करके बोले–"पिताजी! सब लोग हारकर डर के मारे भाग गये हैं। उन्हें डरा हुआ जानकर मैंने वध नहीं किया। इन्द्र पैदल भाग गया, इसलिए में उसका हाथी ले आया हूँ। इसे आप मेरे उपहार के रूप में स्वीकार कर लीजिए! अब मुझे आदेश दीजिए; मुझे जो कुछ करना है, मैं अवश्य करूँगा।"

त्वष्ट्र अपने पुत्र को देख अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले–"बेटा, तुम्हारा पराक्रम असाधारण है। मैं फिर से अपनी छाती फुलाकर लोगों के सामने जा सकता हूँ। मेरी मानसिक व्यथा जाती रही, मेरा जीवन धन्य हुआ। मुझे शांति मिल गई। मैं अब तुम्हें आगे का कार्यक्रम बता देता हूँ! सुनो, हमें तो इन्द्र पर विश्वास नहीं करना चाहिए। उसके इन्द्रजाल की परवाह किये बिना तुम ब्रह्मा के प्रति तपस्या करो, तब अमर बनकर इन्द्र का वध करो। ऐसा कोई असाधारण कार्य

नहीं है जो तप के द्वारा साधा नहीं जा सकते हो। मैं इस बात को भूल नहीं पाता हूँ कि दुष्ट इन्द्र ने अकारण ही मेरे पुत्र का वध किया है। इसलिए तुम उस इन्द्र का संहार करो।"

इसके बाद वृत्र अपने पिता की आज्ञा लेकर क्रोधावेश में गंधमादन पर्वत पर पहुँचे, प्रति नित्य गंगा जी में स्नान करते दर्भासन में शयन करते, समस्त प्रकार का आहार त्याग कर योग का अवलंबन किया। ब्रह्मा के प्रति घोर तपस्या की।

उधर इन्द्र के दिल में घबराहट पैदा हो गई। वे केवल किसी का तपोभंग मात्र करवा सकते थे। इस वास्ते उन्होंने अप्सराओं को भेजा। उनकी चेष्टाएँ वृत्र पर काम न कर सकीं। उन्होंने इन्द्र के पास लौटकर बताया कि वृत्र की तपस्या भंग करना उनकी शक्ति के बाहर की बात है।

अंत में ब्रह्मा वृत्र की तपस्या पर प्रसन्न हो प्रत्यक्ष हुए और बोले-"वृत्र, तुम अब अपनी तपस्या बंद करो। तुम जो वर चाहते हो, मांग लो।"

वृत्र ने दोनों हाथ जोड़कर ब्रह्मा से निवेदन किया-"भगवन! इसके पूर्व ही मैं इन्द्र के पद को प्राप्त कर प्रसन्न हूँ। आज आपके दर्शन हुए, यह मेरेलिए अत्यंत ही प्रसन्नता की बात है। मैं धन्य हो गया हूँ। अगर आप मुझे वर देना चाहते हैं तो ऐसा वर दीजिए कि धातुओं से, सूखी व अनसूखी बांस की वस्तुओं से तथा अन्य आयुधों से भी मेरी मृत्यु न हो। युद्ध के बढ़ने के साथ मेरी शक्ति भी बढ़ती जावे, ऐसा वर दे दीजिए।"

ब्रह्मा ऐसा ही वर देकर अंतर्धान हुए।

वृत्र परमानंदित हो अपने पिता के पास लौट आये और सारा वृत्तांत उन्हें सुनाया।

तब त्वष्ट्र ने कहा-"बेटा, सदा तुम्हारा शुभ हो! अकारण ही विश्वरूप का संहार करके ब्रह्महत्या का पाप मोल लेनेवाले उस इन्द्र का अब तुम निर्भय होकर संहार करो।"

सास का कमरा

जगदलपुर में राजमल नामक एक किसान ने गाँव के मुखिये का खेत ठेके पर लेकर खूब धन कमाया और अपना निजी मकान बनाने का इरादा किया। उस वक्त राजमल की पत्नी सुशीला ने मकान से थोड़ी दूर पर एक छोटा सा कमरा बनवाने का अनुरोध किया। यह कमरा उसकी सास के लिए था। यह बात भांपकर भी राजमल ने अपनी औरत की बात मान ली।

लेकिन मकान का काम पूरा होने के पहले ही राजमल की माँ चल बसी। उसके वास्ते जो कमरा बनाया गया अब उसकी जरूरत नहीं रह गई। इस बीच मुखिये के मन में इस बात की ईर्ष्या हो गई कि उसके खेत से राजमल ने काफी रुपये कमाये हैं, उसने अपने खेत वापस ले लिये। छोटे किसानों के खेत ठेके पर लेने की राजमल की इच्छा न रही, इस वजह से वह अपना नया मकान किराये पर देकर दूसरे गाँव में चला गया।

थोड़े साल बाद राजमल का देहांत हो गया। उसका लड़का अब बड़ा हो चुका था। उसने शादी भी कर ली। इसके बाद सुशीला अपने पुत्र और बहू को लेकर जगदलपुर के अपने निजी मकान को लौट आई। सुशीला की बहू ने सारा मकान देखकर पूछा—"ससुरजी ने मकान बड़ा अच्छा बनवाया, मगर उन्हें उस वक्त यह बात कैसे मालूम हो गई कि आप अकेले उस कोने के कमरे में रहेंगी?" ये बातें सुनने पर सुशीला अवाक रह गई।
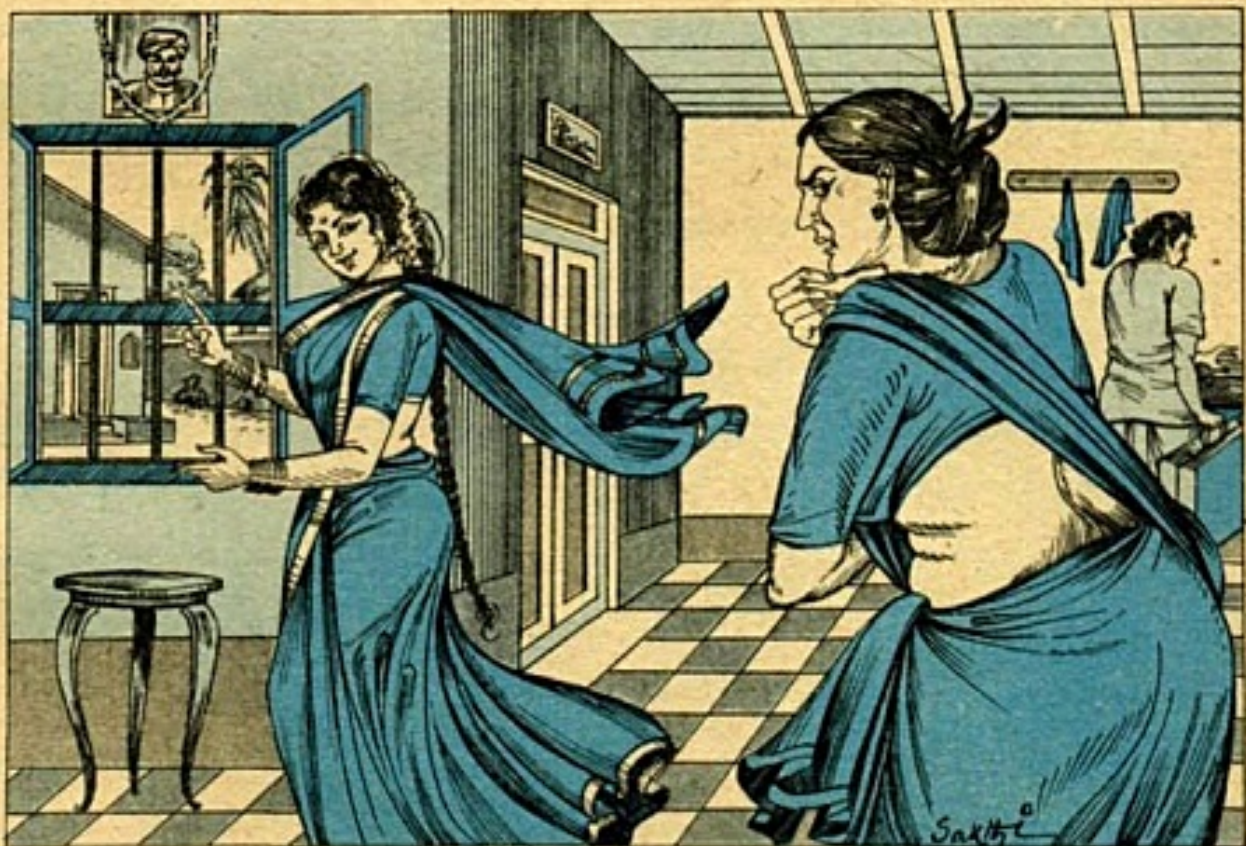
चौथा चोर

किसी देश में तीन नामी डाकू थे।

वे रोज कोई न कोई चोरी किया करते थे, लेकिन उन्हें पकड़ना किसी के लिए भी संभव न हुआ। उनके नाम से ही अमीर लोग थर-थर कांप उठते थे। उन्हें बन्दी बनाने के ख्याल से उस देश का राजा हर रात को डाकू जैसा वेष धरकर नगर के चारों कोनों में चक्कर लगाने लगे।

यों कई रातें बीत गईं। एक दिन रात को राजा को डाकुओं के निवास का पता चल गया। राजा जब वहाँ पहुँचे तब डाकू उस रात की चोरी के बारे में चर्चा कर रहे थे।

नय डाकू को देखते ही पुराने डाकुओं के मन में संदेह हुआ। उन लोगों ने पूछा–"तुम कौन हो? यहाँ पर किस काम से आये हो?"

"मैं भी एक डाकू हूँ। मैंने सुना है कि तुम लोग इस प्रदेश के मशहूर डाकू हो। इसलिए मैं तुम्हें अपनी ताक़त का परिचय देने आया हूँ।" राजा ने कहा।

चोरों ने हँसकर पूछा–"क्या तुम हमारी शक्तियों के बारे में कुछ जानकारी रखते हो?"

"नहीं, कहिये तो, मैं भी सुन लूं!" राजा ने पूछा।

"मैं बड़े से बड़े ताले को भी एक तीली से खोल सकता हूँ।" पहले डाकू ने कहा।

"मैं जमीन पर कान लगाकर सुन लूं तो यूँ ही पता दे सकता हूँ कि धन कहाँ पर छिपा रखा हुआ है?" दूसरे डाकू ने अपनी हुनर का परिचय दिया।

"एक बार में किसी को देख लेता हूँ तो वह भले ही अपना वेष बदल दे,

में आसानी से उसे पहचान सकता हूँ।" तीसरे डाकू ने अपनी विद्या का परिचय दिया।

इसके बाद तीनों ने राजा से पूछा– "अब तुम बताओ, कैसी शक्ति रखते हो?"

राजा की समझ में न आया कि क्या बताया जाय? इसलिए उन्होंने यों कहा– "अगर मैं अंगूठे को नीचे उतार दूँ तो किसी को भी यमलोक में भेज सकता हूँ। तर्जनी को ऊपर उठा दूँ तो मरने के लिए भी तैयार व्यक्ति प्राणों के साथ बच जाते हैं।"

यह बात सुनने पर तीनों डाकू बहुत खुश हुए। उन लोगों ने सोचा कि ऐसी बड़ी शक्ति और सामर्थ्य रखनेवाला व्यक्ति उनके दल में आ गया है।

इसके बाद राजा ने पूछा–"आज रात को हम लोग कहाँ पर डाका डाले?"

"तुम्हारी जैसी मर्जी? जहाँ तुम चाहोगे, वहीं जायेंगे? तुम खुद हमारी शक्तियों को अपनी आँखों से देख लोगे?" तीनों डाकुओं ने एक साथ कहा।

"तब तो आज हम राजा का खजाना लूट लेंगे।" राजा ने सुझाया।

इस निर्णय के बाद चारों डाकू चोरी करने राजमहल की ओर चल पड़े। पहरेदारो की आँख बचाकर वे लोग भीतर पहुँचे। दूसरे डाकू ने जमीन से कान लगाकर ध्यान से सुना, तब कहा–

"खजाना तो उस तरफ़ है! बड़ी सावधानी से चलिए!"

चारों उसी ओर बढ़े, खजाने के दर्वाजे पर बहुत बड़ा ताला लगा हुआ था। फिर भी पहले डाकू ने उसे पल भर में खोल दिया, तब डाकू भीतर घुस पड़े।

उस वक़्त राजा उनकी आँख बचाकर कहीं चले गये और अपने सिपाहियों को भेजा। तीनों डाकू माल सहित पकड़े गये।

दूसरे दिन उन्हें दरबार में हाज़िर किया गया, गद्दी पर बैठे राजा को देखते ही तीसरे डाकू ने अपने साथियों से कहा–"कल हमारे साथ डाका डालने आया हुआ नया आदमी यही था!"

सुनवाई के बाद राजा ने अपने दायें हाथ का अंगूठा नीचे उतारा। डाकुओं को मौत की सजा सुनाई गई।

दूसरे दिन सवेरे उन्हें फांसी के तख्ते के पास ले जाया गया। एक अधिकारी ने प्रवेश करके उन लोगों से पूछा–"बताओ, तुम लोगों की आखिरी इच्छा क्या है?"

"हमें तो राजा से एक सवाल पूछना है, यही हमारी आखिरी इच्छा है!" डाकुओं ने जवाब दिया।

राजा आ पहुँचे। उन्होंने डाकुओं से पूछा–"तुम लोग मुझसे कैसा सवाल पूछना चाहते हो?"

"महाराज! वैसे बात कुछ नहीं है। हमने आप के सामने हमारी शक्तियों का प्रदर्शन किया। आप ने अपनी शक्तियों के बारे में हमें दो बातें बताईं। उनमें से एक ही का आप ने प्रदर्शन किया। दूसरे शक्ति को भी देख हम खुश होना चाहते हैं! यही हमारी इच्छा है!" तीसरे डाकू ने कहा।

राजा ने मुस्कुराकर अपनी तर्जनी ऊपर उठाई, दूसरे ही क्षण सिपाहियों ने आकर डाकुओं के बंधन खोल दिये और फांसी के तख्ते पर से उन्हें नीचे उतार दिये।

इसके बाद डाकुओं ने अपनी लूट-खसोट बंद की। राजा के दरबार में नौकरी करते राजा के प्रति श्रद्धा-भक्ति दिखाते अपने दिन बिताने लगे।
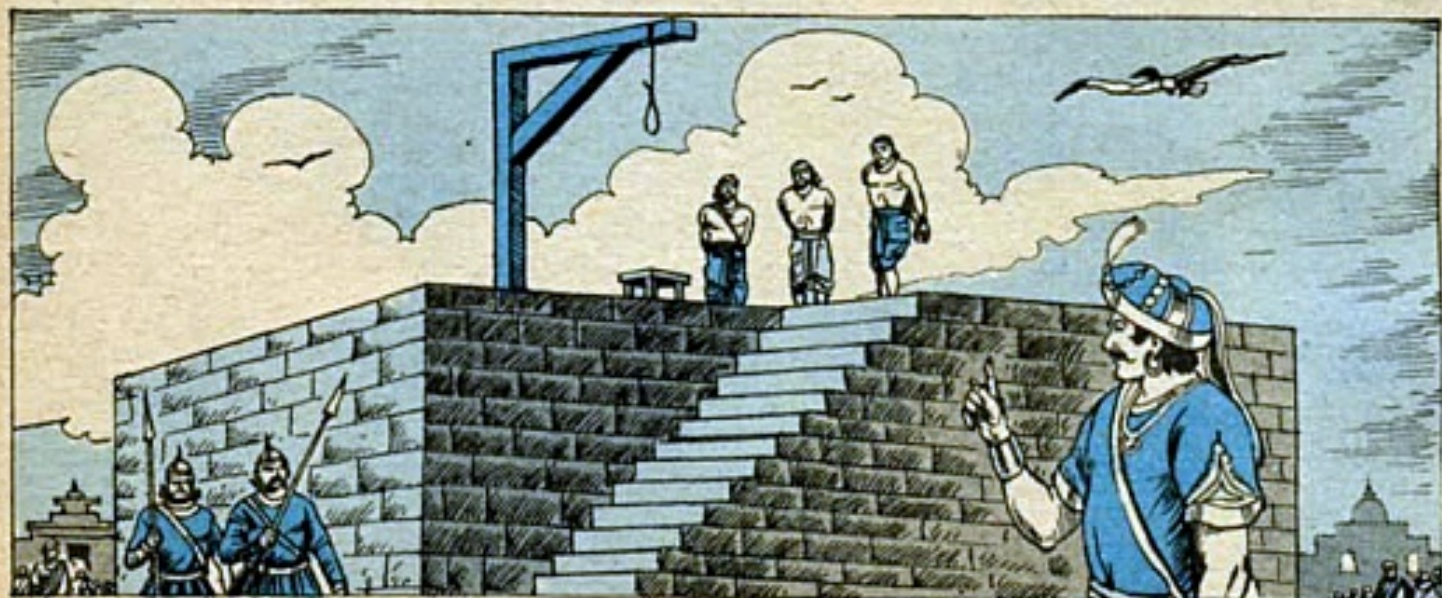
नासमझी

बलरामवर्मा ने दस हज़ार रुपये दहेज लेकर अपने पुत्र का विवाह चन्द्रमोहन की बड़ी कन्या के साथ किया। इसके दस साल बाद चन्द्रमोहन ने अपनी दूसरी बेटी का विवाह पंद्रह हज़ार दहेज देकर किया।

इसे देख बलरामवर्मा ने चन्द्रमोहन से कहा–"तुम्हारे दूसरे दामाद से मेरा बेटा किस बात में कम है? उसे भी पाँच हज़ार और दे दो, वरना अपनी बेटी को अपने घर लेते जाओ।"

चन्द्रमोहन की समझ में न आया कि क्या किया जाय। उसने मुखिये को अपनी मुसीबत सुनाई। मुखिये ने बलराम को बुलवाकर कहा–"मैंने सुना है कि तुमने चन्द्रमोहन से और पाँच हज़ार रुपयों की माँग की है। तुम्हारे बेटे को दस साल पहले जो दस हज़ार दहेज के रूप में दिये गये हैं, वे आज तक ब्याज के साथ बाईस हज़ार बनते हैं। इस हिसाब से तुम्हीं चन्द्रमोहन के लिए सात हज़ार कर्जदार निकलते हो।"

ये बातें सुनने पर बलरामवर्मा अवाक् रह गया।
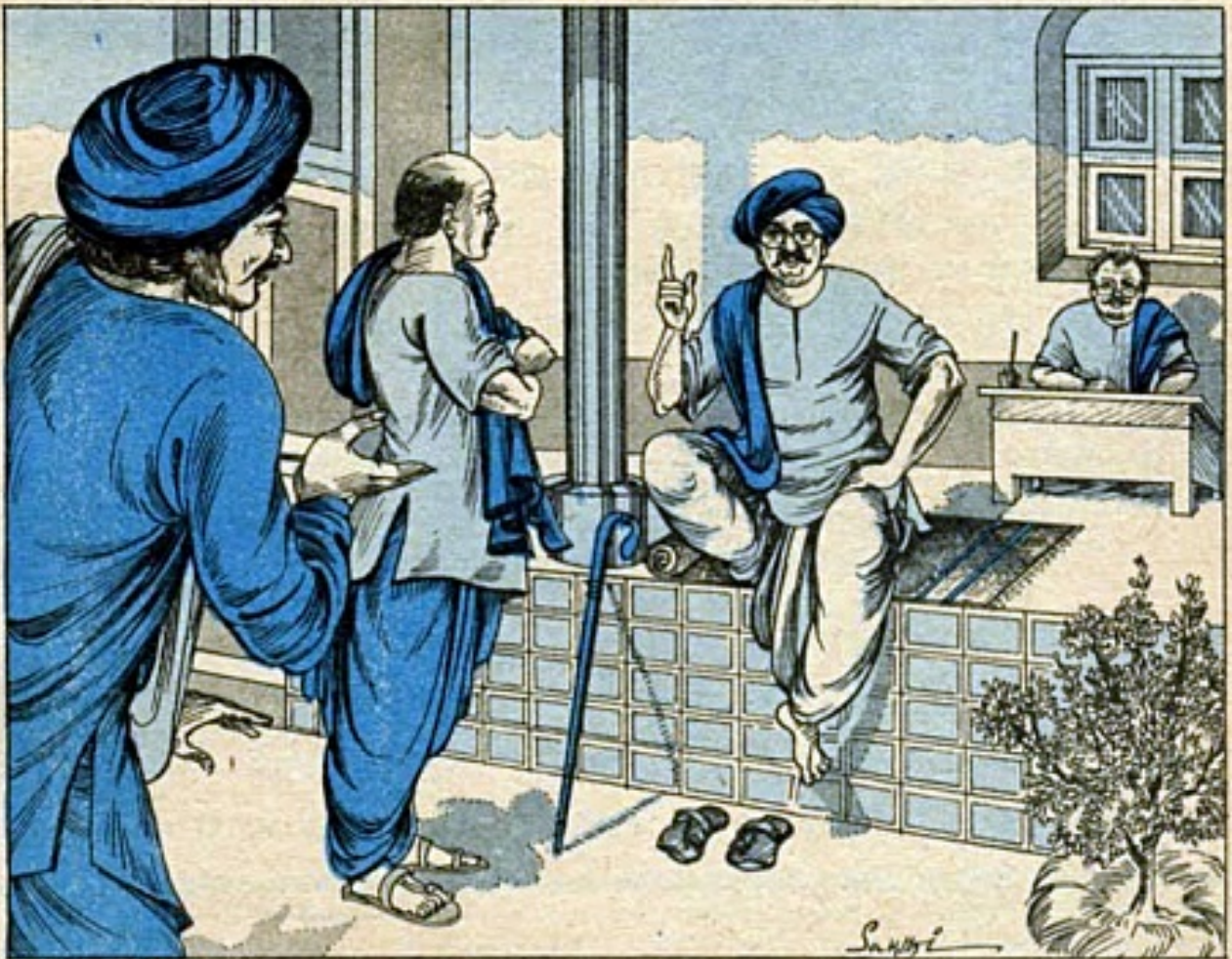
फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २५)

पुरस्कृत परिचयोक्तियां मई १९८० के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

V. Krishna Rao

Bishan Maheshwari

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियां दो-तीन शब्दों की हों और परस्पर संबंधित हों।

★ मार्च १० तक परिचयोक्तियां प्राप्त होनी चाहिए, उसके बाद प्राप्त होनेवाली परिचयोक्तियों पर विचार नहीं किया जाएगा।

★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) २५ रु. का पुरस्कार दिया जाएगा।

★ दोनों परिचयोक्तियां कार्ड पर लिखकर (परिचयोक्तियों से भिन्न बातें उसमें न लिखें) निम्नलिखित पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

जनवरी के फोटो-परिणाम

प्रथम फोटो : **आओ खेलें, भर लो हवा!**

द्वितीय फोटो : **ठहरो, कर लूं भूख की दवा!!**

प्रेषक : **सुशीलकुमार 'अकेला'** थाना चौक, पो. खगडिया - ८५१२०४ (बिहार)

पुरस्कार की राशि रु. २५ इस महीने के अंत तक भेजी जाएगी।

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 2 & 3, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

चन्दामामा के ग्राहकों को सूचना

यदि आप अपना पता बदल रहे हों, तो पांचवीं तारीख़ से पहिले ही अपनी ग्राहक-संख्या के साथ, अपना नया पता सूचित कीजिये। यदि विलम्ब किया गया, तो अगले मास तक हम नये पते पर 'चन्दामामा' न भेज सकेंगे।

आपके सहयोग की आशा है।

डाल्टन एजन्सीस, मद्रास-६०० ०२६

Statement about ownership of CHANDAMAMA (Hindi)
Rule 8 (Form VI), Newspapers (Central) Rules, 1956

1.	*Place of Publication*	...	'CHANDAMAMA BUILDINGS' 188, Arcot Road Vadapalani, Madras-600 026
2.	*Periodicity of Publication*	...	MONTHLY 1st of each calendar month
3.	*Printer's Name*	...	B. V. REDDI
	Nationality	...	INDIAN
	Address	...	Prasad Process Pvt Limited 188, Arcot Road, Vadapalani Madras-600 026
4.	*Publisher's Name*	...	B. VISWANATHA REDDI
	Nationality	...	INDIAN
	Address	...	Chandamama Publications 188, Arcot Road, Vadapalani Madras-600 026
5.	*Editor's Name*	...	NAGI REDDI
	Nationality	...	INDIAN
	Address	...	'Chandamama Buildings' 188, Arcot Road, Vadapalani Madras-600 026
6.	*Name & Address of individuals who own the paper*	...	CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND Beneficieries:

1. B. V. HARISH
2. B. V. NARESH
3. B. V. L. ARATI
4. B. L. NIRUPAMA
5. B. V. SANJAY
6. B. V. SHARATH
7. B. L. SUNANDA
8. B. N. RAJESH
9. B. ARCHANA
10. B. N. V. VISHNU PRASAD
11. B. L. ARADHANA
12. B. NAGI REDDI

All Minors—by Trustee:
M. UTTAMA REDDI, 9/3, V.O.C. Street, Madras-600 024

I, B. Viswanatha Reddi, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

1st March 1980

B. VISWANATHA REDDI
Signature of the Publisher

చందమామ அம்புலி மாமா

Chandamama is published in TWELVE INDIAN Languages including English: educating and entertaining millions of readers. Our SINHALA Language edition is now dedicated to delight the children of SRILANKA

CHANDAMAMA

the magazine for children makes the young and old WISE.

চাঁদমামা **CHANDAMAMA** चांदोबा

CHANDAMAMA (Hindi) MARCH 1980 Regd. No. M. 5452